अरुण यह मधुमय देश हमारा

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिंदी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। छायावाद के आलोक स्तंभों में प्रसाद का विशिष्ट स्थान है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रसाद जी ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध सभी विधाओं में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रसाद में भावना, विचार और शैली तीनों की पूर्ण प्रौढ़ता मिलती है, जो विश्व के बहुत कम कवियों में संभव है। व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही दृष्टियों से प्रसाद और उनका काव्य अद्वितीय है।

प्रसाद जी कवि रूप में अधिक प्रतिष्ठित हुए हैं 'प्रेमपथिक', 'झरना', 'आंसू', 'लहर' और 'कामायनी' उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। वहीं पर 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती' उनके प्रमुख उपन्यास हैं। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी', 'गुंडा', 'इंद्रजाल' जैसी कहानियाँ, 'काव्य और कला' तथा अन्य निबंध उनकी गद्य कला के बेजोड़ नमूने हैं।

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।
सरल तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा।।
लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए, समझ नीड़ निज प्यारा।।
बरसाती आँखों के बादल, बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की, पाकर जहाँ किनारा।।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे, भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊँघते रहते जब, जगकर रजनी भर तारा।।

बेजगह

अनामिका

अनामिका

जन्म : 1961 के उत्तरार्द्ध में मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार।
शिक्षा : अंग्रेजी साहित्य से पीएच.डी.।
प्रकाशित साहित्यः
आलोचना—पोस्ट एलिएट पोएट्री : अ वॉएज फ्रॉम कांफ्लिक्ट टुआइसोलेशन, डन क्रिटिसिज़्म डाउन दि एजेज, ट्रीटमेंट ऑव लव ऐंड डेथ इन पोस्ट वार अमेरिकन विमेन पोएट्स;
विमर्श—स्त्रीत्व का मानचित्र, मन माँजनेकी ज़रूरत, पानी जो पत्थर पीता है, साझा चूल्हा, त्रिया चरित्रम् : उत्तरकांड;
कविता—ग़लत पते की चिट्ठी, बीजाक्षर, समय केशहर में, अनुष्टुप, कविता मेंऔरत, खुरदुरी हथेलियाँ, दूब-धान, टोकरी में दिगन्त : थेरी गाथा : 2014, पानी को सब याद था;
कहानी—प्रतिनायक;
संस्मरण—एक ठो शहर था, एक थे शेक्सपियर, एक थेचार्ल्स डिकेंस;
उपन्यास—अवान्तर कथा, दस द्वारेका पींजरा, तिनका तिनके पास;
अनवुाद—नागमंडल (गिरीश कारनाड), रिल्के की कविताएँ, एफ्रो-इंग्लिश पोएम्स, अटलांत केआर-पार (समकालीन अंग्रेजी कविता), कहती हैं औरतें(विश्व साहित्य की स्त्रीवादी कविताएँ) तथा द ग्रास इज़ सिंगिंग।
सम्मान : राजभाषा परिषद् पुरस्कार, भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, साहित्यकार सम्मान, गिरिजाकुमार माथुर सम्मान, परम्परा सम्मान, साहित्य सेतु सम्मान, केदार सम्मान, शमशेर सम्मान, सावित्रीबाई फुले सम्मान, मुक्तिबोध सम्मान और महादेवी सम्मान आदि।
सम्प्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय मेंअंग्रेजी साहित्य का अध्यापन।

बेजगह

"अपनी जगह से गिरकर
कहीं के नहीं रहते
केश, औरतें और नाखून"—
अन्वय करते थे किसी श्लोक का ऐसे
हमारे संस्कृत टीचर।
और मारेडर के जम जाती थीं
हम लड़कियाँ
अपनी जगह पर!

जगह? जगह क्या होती है?
यह, वैसे, जान लिया था हमने
अपनी पहली कक्षा मेंही!
याद था हमें एक-एक अक्षर
आरम्भिक पाठों का—
"राम, पाठशाला जा!
राधा, खाना पका!
राम, आ बताशा खा!
राधा, झाड़ू लगा!
भैया अब सोएगा,
जाकर बिस्तर बिछा!
अहा, नया घर है!
राम, देख, यह तेरा कमरा है!
"और मेरा?"
"ओ पगली,
लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं
उनका कोई घर नहीं होता!"

जिनका कोई घर नहीं होता—
उनकी होती है भला कौन-सी जगह?
कौन-सी जगह होती है ऐसी
जो छूट जाने पर
औरत हो जाती है
कटे हुए नाखूनों,
कंघी मे फँसकर बाहर आए केशों-सी
एकदम से बुहार दी जानेवाली?

घर छूटे, दर छूटे, छूट गए लोग-बाग,
कुछ प्रश्न पीछे पड़े थे, वे भी छूटे!
छूटती गई जगहें।

****

इस तरह

गगन गिल

सन् 1983 में 'एक दिन लौटेगी लड़की' कविता शृंखला के प्रकाशित होते ही गगन गिल (जन्म : 1959, नयी दिल्ली, शिक्षा : एम.ए. अंग्रेजी साहित्य) की कविताओं ने तत्कालीन सुधीजनों का ध्यान आकर्षित किया था। तब से अब तक उनकी रचनाशीलता देश-विदेश के हिन्दी साहित्य के अध्येताओं, पाठकों और आलोचकों के विमर्श का हिस्सा रही है।

लगभग 35 वर्ष लम्बी इस रचना यात्रा की नौ कृतियाँ हैं—पाँच कविता-संग्रह : एक दिन लौटेगी लड़की (1989), अँधेरे में बुद्ध (1996), यह आकांक्षा समय नहीं (1998), थपक थपक दिल थपक थपक (2003), मैं जब तक आयी बाहर (2018) एवं 4 गद्य पुस्तकें : दिल्ली में उनींदे (2000), अवाक् (2008), देह की मुँडेर पर (2018), इत्यादि (2018)। अवाक् की गणना बीबीसी सर्वेक्षण के श्रेष्ठ हिन्दी यात्रा वृत्तान्तों में की गयी है।

सन् 1983-93 में टाइम्स ऑफ इण्डिया समूह व सण्डे ऑब्जर्वर में एक दशक से कुछ अधिक समय तक साहित्य सम्पादन करने के बाद सन् 1992-93 में हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, अमेरिका में पत्रकारिता की नीमेन फैलो। देश वापसी पर पूर्णकालिक लेखन।

सन् 1990 में अमेरिका के सुप्रसिद्ध आयोवा इण्टरनेशनल राइटिंग प्रोग्राम में भारत से आमन्त्रित लेखक। सन् 2000 में गोएटे इंस्टीट्यूट, जर्मनी व सन् 2005 में पोएट्री ट्रांसलेशन सेंटर, लन्दन यूनिवर्सिटी के निमन्त्रण पर जर्मनी व इंग्लैण्ड के कई शहरों में कविता पाठ।

भारतीय प्रतिनिधि लेखक मण्डल के सदस्य के नाते चीन, फ्रांस,

इंग्लैण्ड, मॉरीशस, जर्मनी आदि देशों की एकाधिक यात्राओं के अलावा मेक्सिको, ऑस्ट्रिया, इटली, तुर्की, बुल्गारिया, तिब्बत, कम्बोडिया, लाओस, इण्डोनेशिया की भरपूर यात्राएँ।

भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार (1984), संस्कृति सम्मान (1989), केदार सम्मान (2000), हिन्दी अकादमी साहित्यकार सम्मान (2008) व द्विजदेव सम्मान (2010) से सम्मानित।

गगन गिल

•

इस तरह

इस तरह शुरू होती है यात्राएँ
एक पत्थर टकराकर
आपके पाँव से
गिर जाता है नीचे
घाटी में

पल भर के लिए आप
भौंचक रह जाते हैं

रास्ते की बजाय नीचे घाटी में
दिखती है नदी
सुन्दर नहीं, भयानक

आप चढ़ाई चढ़ रहे होते हैं
तोड़ देता है
हवा का दबाव
सीने का पिंजरा
निकल आता है बाहर
धक्-धक् करता दिल

आँखों के आगे
छा जाती है काली धुँध
कुछ समझ नहीं पाते
ऊपर जायें या नीचे

कि तभी
चट्टान में से
झाँकते हैं
नन्हें नीले फूल

उड़ जाती है एक तितली
छूकर आपकी बाँह

घास उठाती है
हलके से अपना सिर

आप मुस्कराते हैं
हौले से

और देखते हैं
आप ही नहीं हैं
प्रकृति में अकेले
एकान्त में मुस्काने वाले

फूल हैं
और तितलियाँ
और बच्चे
बहुत बूढ़े हो गये
समय के उस पार चले गये कुछ लोग

सब मुस्करा रहे हैं अकेले-अकेले
ठीक इस वक्त

सब चलते हैं अकेले
रुकते हैं, मुड़ते हैं

पता ही नहीं चलता उन्हें
अकेले नहीं वे
जब तक छू न जाये उन्हें
तितली का पंख

इस तरह शुरू होती हैं यात्राएँ
एक पत्थर से
दूसरे पत्थर तक
रुक-रुक कर

धीरे-धीरे पहुँचते हैं आप
चोटी तक
देखते हैं मुड़कर

न कहीं फूल दिखाई देते हैं
न तितली

न वह पत्थर
जो एक दोपहर
पैर से टकराया था
आप लुढ़कने वाले थे नीचे घाटी में

कैसे नादान थे आप
सोचते थे तब

गिरे तो मरे
जानते न थे
इस तरह होती हैं यात्रएं

****

सारांश

'इस तरह' कविता में कवयित्री ने यह बताने की कोशिश की है कि जीवन तो एक यात्रा है। एक मंजिल से दूसरे मंजिल की ओर की यात्रा है ज़िन्दगी। अंतिम मंजिल मृत्यु ही है। इसमें मृत्यु तक प्रगाामी जीवन में प्रतीत आकस्मिकता और भय का चित्रण किया गया है।

जीवन निरंतर एक यात्रा ही है। आगे बढ़ने वक्त पत्थर से पैर टकराना स्वाभाविक है। वह पत्थर नीचे घाटी में गिर जाना भी संभव है। ऊपर चढ़ाई चढ़ने वक्त भी हम आगे रास्ते की बजाय नीचे नदी देखती है। तब उसकी सुन्दरता नहीं दिखती भयानक प्रतीत होती है। सांस लेना मुश्किल हो जाता है, दिल ज़ोर से धड़कने लगता है मानो वह सीने के पिंजरे को तोड़कर बाहर आ गए हो। आँखों में काली धुँध छा जाती है इसी वजह से कुछ भी नहीं दिखाई देती है। तब असमंजस्य में पड़ जाते है कि ऊपर चढ़े या नीचे जाए।

हमारे लिए असमंजस्य की स्थिति है लेकिन प्रकृति तब भी संतुलित है। चट्टान में से नन्हें नीले फूल नज़र आते है। वही से उड़ आई तितली बाहों को छूकर उड़ जाती है। घास हल्के से अपना सिर उठाती है। यह सब देखकर हौले से हम भी मुस्कराते हैं।

फूल, तितली और बच्चे सब प्रकृति में अकेले मुस्कराने वाले हैं। साथ ही कुछ बूढ़े भी अकेले होने के ऐसे अवसर पर मुस्कुराते रहे हैं। सब अकेले आगे चलते है बीच में रुकते है और मुड़ते भी है। लेकिन वे अकेले नहीं है क्योंकि प्रकृति का सुन्दर स्पर्श यानि तितली का स्पर्श उनके अकेलापन का मनोभाव दूर करता है। मतलब यह है कि प्रकृति हमेशा हमारा साथ है।

एक पत्थर से दूसरे पत्थर तक पैर सावधानी से रखकर रुक-रुक कर हम चोटी तक पहुँच जाते हैं। तब रास्ते का सभी दृश्य फूल, तितली, पत्थर सब अदृश्य हो जाती है। तब हमें मालूम होगा कि जीवन की आकस्मिकता पर हम नादान ही है। पैर से टकराए पत्थर के स्थान पर हम घाटी में गिर जाए तो मृत्यु सुनिश्चित है।

जीवन निरंतर यात्रा है, मृत्यु तक की यात्रा । मृत्यु तक हम आगे बढ़ते हैं बढ़ना ही चाहिए। बीच बीच में बाधा होना स्वाभाविक है, फिर भी आगे बढ़ना चाहिए। जीवन के ऐसे संकट मुहूर्त से आगे बढ़ना वास्तविक रूप से जीवन रूपी यात्रा का शुभारंभ है।

मेरे अधिकार कहाँ हैं?

जयप्रकाश कर्दम

जयप्रकाश कर्दम

जन्म : 05 जुलाई, 1958 को ग्राम—इन्दरगढ़ी, हापुड़ रोड, ग़ाज़ियाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ।

शिक्षा : एम.ए. (दर्शनशास्त्र, हिन्दी, इतिहास), पी-एच.डी. (हिन्दी)।

प्रकाशित साहित्य

कविता—गूँगा नहीं था मैं, तिनका-तिनका आग, बस्तियों से बाहर, राहुल; **उपन्यास**—करुणा, श्मशान का रहस्य; **कहानी**—तलाश, खरोंच; **यात्रा-संस्मरण**—जर्मनी में दलित साहित्य : अनुभव और स्मृतियाँ; **साक्षात्कार**—मेरे संवाद; **आलोचना व वैचारिक पुस्तकें**—श्रीलाल शुक्ल कृत राग दरबारी का समाजशास्त्रीय अध्ययन, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन : साहित्य एवं समाज चिन्तन, दलित विमर्श : साहित्य के आइने में, वर्तमान दलित आन्दोलन, बौद्ध धर्म के आधार स्तम्भ, अम्बेडकरवादी आन्दोलन : दशा और दिशा, हिन्दुत्व और दलित : कुछ प्रश्न कुछ विचार, डॉ. अम्बेडकर, दलित और बौद्ध धर्म, समाज, संस्कृति और दलित, दलित साहित्य : सामाजिक बदलाव की पटकथा, दलित कविता : समकालीन परिदृश्य, दलित साहित्य एवं चिन्तन : समकालीन परिदृश्य; चमार (ब्रिटिश लेखक जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स द्वारा लिखित पुस्तक 'दि चमार्स' का हिन्दी में अनुवाद); मानवता के दूत, डॉ. अम्बेडकर की कहानी, बुद्ध की शरणागत नारियाँ, बुद्ध और उनके प्रिय शिष्य, महान बौद्ध बालक, आदिवासी देवकथा-लिंगो, हमारे वैज्ञानिक : सी.वी. रमन (बाल-साहित्य)।

सम्मान : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार, हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा विशेष योगदान सम्मान सहित अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

मेरे अधिकार कहाँ हैं?

तुम कोठी-बंगलों में रहते
मैं रहता झोपड़ पट्टी में
तुम ए.सी. कूलर में सोते
मैं तपता श्रम की भट्ठी में
तुम दूध-मलाई में नहाओ
मैं रोटी को मुहताज रहूँ
तुम मालिक मैं नौकर ठहरा
फिर समता का संसार कहाँ है?
धन-धरती-मील तुम्हारे हैं
पोखर और झील तुम्हारे हैं
शासन-सत्ता पर काबिज तुम
थाने-तहसील तुम्हारे हैं
तुम जाति-दम्भ के अभिमानी
मुझसे घृण्णा व्यापार करो
वैषम्य-द्वेष के बीहड़ में
मैत्री की मीनार कहाँ है?
तुम कहते हममें भेद नहीं
तुम कहते हम सब भाई हैं
फिर क्यों ऊँचे तुम मैं नीचा
क्यों जाति-वर्ण की खाई है
तुम कहते हम सब हिन्दू हैं
हिन्दू होने पर गर्व करो
हिन्दुत्व राज्य की नगरी में
किन्तु, मेरा घर-द्वार कहाँ है?

तुम चाहो रामराज्य आए
तुम श्रेष्ठ, शूद्र मैं बना रहूँ
तुमको सारे अधिकार रहें
मैं वर्जनाओं से लदा रहूँ
सदियों से शम्बूकों की
गर्दन कटने की परम्परा
इस देश-धरा से उठ जाए
इस आशय का स्वीकार कहाँ है?
कानों में पिघला शीशा
मेरी जिह्वा पर ताले हैं
अस्पृश्य, पशु से भी बेहतर
निज श्वासों तक के लाले हैं
उत्पीड़न की जंजीरों में
यूँ कसा-फँसा सदियों से मैं
न मुर्दा हूँ न ही जी सकता
मेरे मौलिक अधिकार कहाँ हैं?

दोहे

1. सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार।

लोचन अनन्त उघारिया, अनन्त दिखावनहार।।

शब्दार्थ :- सतगुरु -गुरु; अनंत- असीमित; उपगार -उपकार; लोचन- दृष्टि, आँख; उघारिया- खोलकर; दिखावनहार- दिखलानेवाला।

व्याख्या :- ज्ञान के आलोक से संपन्न सद्‌गुरु की महिमा असीमित है। उन्होंने शिष्यों को जो उपकार किया है वह भी असीम है। सद्‌गुरु ही अपने भक्त या शिष्य की अज्ञता को दूर करनेवाला है। अपने शिष्य की अपार शक्ति संपन्न ज्ञान को

2. चौसठि दीवा जोई करि, चौदह चन्दा मांहि।

तिहि घर किसको चांदना, जिहि घर गोविन्द नांहि।।

शब्दार्थ : चौसठि -चौसठ; दीवा-दीपक, दिया; चंदा- चंन्द्रमा; चांदना- प्रकाश।

व्याख्या : किसी घर में चौंसठ दीपकों को एक साथ प्रज्वलित किया जाय और उसमें चौदह चन्द्रमा (चन्द्रमा की चौदहों कलाओं) की चाँदनी समाहित हो जाय तो भी यदि वहाँ गोविन्द का प्रकाश नहीं है तो अंधेरा ही रहता है। आलोकित होना है तो वहाँ गोविंद अनिवार्य है। गोंविद के बिना किसी की चाँदनी वहाँ हो ही नहीं सकती।

इस साखी में घर शरीर का प्रतीक है। चौंसठ दीपक यानि चौंसठ कलाएँ और चौदह चंदा का मतलब है चौदह विधाएँ। यदि किसी व्यक्ति जितना भी क्षमतावान क्यों न हो यानि उसमें चौंसठ कलाओं और चौदह विधाओं का ज्ञान है किंतु उसमें ईश्वरीय आलोक का अभाव है तो उसका ज्ञान प्रकाशित नहीं हो सकता। प्रस्तुत दोहे में कबीर ने भक्ति और ज्ञान के संबंध को प्रदर्शित किया है। इसमें विशेषोक्ति अलंकार का विधान है।

3. पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया शरीर।

सतगुरु दांव बनाइया, खेलें दास कबीर।।

शब्दार्थ :- सारी- गोट।

व्याख्या : - चौपड़ के खेल में पासा और गोटी का प्रयोग होता है। ईश्वर भक्ति के लिए कबीर ने शरीर को गोटी और प्रेम को पासा बताया है। सद्गुरु ने दाँव बता दिया। अब प्रेम और भक्ति का खेल चल रहा है। व्यक्तियों की मानसिक वृत्तियाँ और व्यवहार भिन्न-भिन्न होते हैं। संसार में आकर्षण के भी अनेक रूप हैं। मध्यकाल में चौपड़ का खेल एक लोकप्रिय खेल था। यहाँ कबीर ऐसे खेल प्रेमियों को भक्ति के चौपड़ में खेलने केलिए आमंत्रित करते हैं। क्योंकि इसका फल उत्कृष्ट है।

इसमें रूपक अलंकार है। रूपक के आवरण में प्रेम और भक्ति का रोचक चित्रण है। प्रभु-प्रेम पर पासे का आरोप किया गया है।

4. चकई बिछुरो रेनि को, आयी मिली परभाति।

जे जन बिछुटे राम सों, ते दिन मिले न राति।।

शब्दार्थ :- चकई -एक प्रकार के पंछी जो रात को बिछुड़ने पर ही दिन में मिलते हैं ; बिछुरो- बिछुड़ना; रेनि-रात्रि; परभाति- प्रभात, सवेरा, सुबह; जे-जो; सों- से, ते- उसे, उन्हें।

व्याख्या :- कबीर कहते है कि यद्यपि चकई पंछी रात को बिछुड़ जाते हैं पर दिन होते ही उनका मिलन होता है। वे सिर्फ रात को अलग रहने के लिए अभिशप्त हैं। लेकिन जो व्यक्ति राम से अलग होता है, फिर रात हो या दिन किसी भी

वक्त मिलन असंभव है। इसलिए कबीर की सलाह है कि हमेशा राम के प्रेम या भक्ति में तल्लीन रहना ही बेहतर है। राम यानि ईश्वर से बिछुट या अलग होने वाला जीव (आत्मा) कभी भी परमात्मा से मिल न पाएगा।

5. बिरहिनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझे धाई।

एक सबद कहि पीव का, कबइ मिलेंगे आइ।।

शब्दार्थ :- बिरहिनी- वियोग में जीने वाली; ऊभी-खड़ी; पंथ सिरि- रास्ते पर; पंथी- पथिक; बूझै- पूछती है; धाइ- दौड़ कर; सबद-शब्द; कहि- कहना; पीव प्रियतम; कबई- कब; आइ-आना।

व्याख्या :- आत्मा रूपी विरहिणी रास्ते में खड़ी है। वह हर गुज़रने वाले पथिक से प्रियतम का हाल पूछती है। परमात्मा के मिलन से आकुल आत्मा का चित्रण इसमें होता है। आत्मा विरहिणी है। वह कहती है कि हे पथिक एक शब्द तो बताओ कि प्रियतम कब आकर मुझसे मिलेंगे।

इस सखी में 'पंथ' जीवन पथ का सूचक है। उसमें गुज़रने वाले पथिक साधु महात्मा हैं। जिन्हें परमात्मा के विषय में पूर्ण ज्ञान है वे ही विरहिणी की दशा देखकर बता सकते हैं कि क्या उसकी साधना की चरम सीमा आ गयी है?

इसमें भावात्मक रहस्यवाद की अभिव्यंजना की गयी है। आध्यात्मिक श्रृंगार की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति इसमें झलकती है।

समाज सुधारक कबीरदास का जीवन परिचय :-

वे निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। उनका जन्म - सन् 1398 में काशी(वाराणसी) में हुआ । वे विधवा ब्राह्मणी का पुत्र था। उनका पालन-पोषण मुस्लिम जुलाहा दम्पती नीरू और नीमा ने किया। वे रामानंद के शिष्य थे। उनकी पत्नी का नाम लोई (रमजनिया) और दो सन्तान थे। बेटा का नाम कमाल, बेटी का नाम कमाली। उनकी मृत्यु (निधन) वाराणसी के पास स्थित गाँव मगहर में हुआ। कबीर की वाणियों का संकलन उनके शिष्य धर्मदास ने 'कबीर बीजक ' शीर्षक से किया।

कबीर की वाणी तीन रूपों में प्रकट हुई_साखी /साक्षी (दोहे),सबद / शब्द (पद), रमैणी/ रामायणी (चौपाई) । संत कबीर के व्यक्तित्व में कवि, भक्त, योगी और समाज सुधारक आदि विविध आयाम प्राप्त है। रमैणी में उनका भक्त रूप, सबद में योगी रूप और साखी में समाज सुधारक रूप प्रकट होता है। कबीर की भाषा सधुक्कडी थी। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर को वाणी का डिक्टेटर भी कहा है। उन्होंने मूर्ति पूजा, अवतारवाद, तीर्थयात्रा, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, धार्मिक बाह्याडबरों , अंधविश्वास आदि का विरोध किया।

मैं ने कहा, पेड़

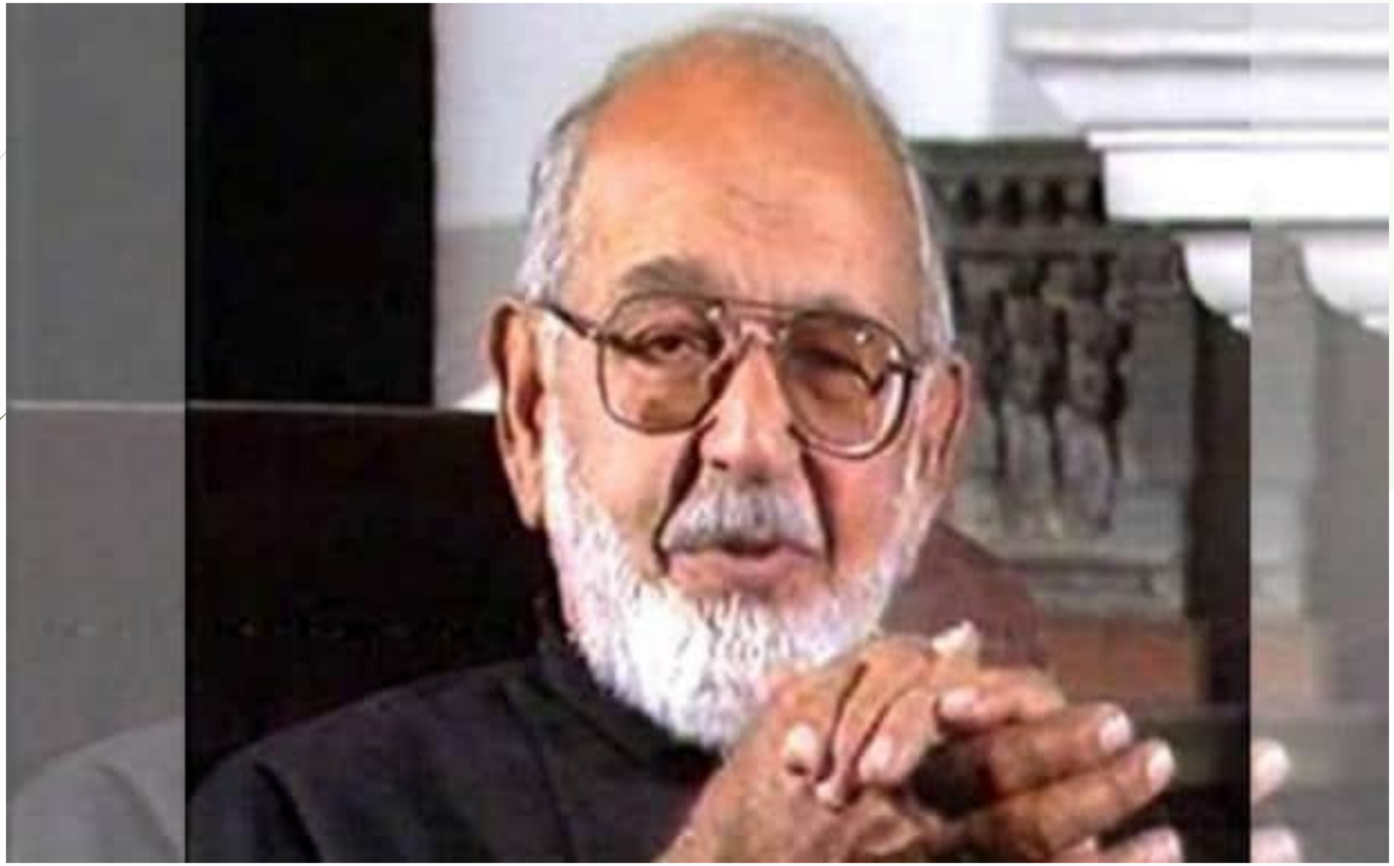

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

अज्ञेय का जन्म देवरिया जनपद के कसिया नामक स्थान पर 7 मार्च, 1911 को हुआ था। इनका पूरा नाम सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' है, जिसमें पिता का नाम हीरानन्द भी इन्होंने जोड़ लिया था। इनके पिता पं. हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व-विभाग में एक उच्च अधिकारी थे। अज्ञेय के पूर्वज पंजाब के निवासी भणोत सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके दादा संस्कृत के प्रकांड पंडित थे।

अज्ञेय की शिक्षा-दीक्षा कुलपरम्परानुकूल रटंत पद्धति से आरम्भ हुई। इन्होंने 1925 ई. में पंजाब में मैट्रिक की परीक्षा पास की। तदुपरान्त ये इंटरमीडिएट के लिए मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज में दाखिल हुए तथा 1927 ई. में आई.एस-सी. की परीक्षा पास कर पुन: पंजाब में लाहौर के फॉरमैन कॉलेज में इन्होंने बी.एस-सी. में नाम लिखाया। 1929 ई. में इन्होंने बी.एस-सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। अज्ञेय की पहली कविता लाहौर की कॉलेज पत्रिका में छपी थी, जो अब उनके दूसरे कविता-संग्रह 'चिन्ता' में संगृहीत है। इनका पहला काव्य-संग्रह 'भग्नदूत' (1933 ई.) है। 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' की छायावादी कविताओं से अपनी काव्य-यात्रा प्रारम्भ करनेवाले अज्ञेय प्रयोगवाद और नई कविता के विशिष्ट कवि हैं।

'तारसप्तक' की कविताओं के साथ अज्ञेयजी की नई काव्य-यात्रा आरम्भ होती है। 'हरी घास पर क्षण भर' (1949), 'बावरा अहेरी' (1954) और 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (1957) रचनाओं में अज्ञेय की व्यक्ति-चेतना निरन्तर एक दर्शन के रूप में संघठित होती दिखाई देती है। 'आँगन के पार द्वार' (1961) तक आते-आते अज्ञेय का व्यक्ति-चिन्तन भारत के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की तत्त्व-विचार सम्बन्धी अवधारणाओं के सार को अपने मनोनुकूल ढालकर एक नया दर्शन खड़ा करता है।

अज्ञेय ने कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। ये कुछ महीनों तक आगरा से प्रकाशित होने वाले 'सैनिक' के सम्पादक मंडल में रहे। 1937 के अन्त में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर ये 'विशाल भारत' के सम्पादक मंडल

में आए। कोई डेढ़ वर्ष बाद व्यक्तिगत कारणों से इन्होंने 'विशाल भारत' छोड़ दिया और कुछ दिनों तक पटना से प्रकाशित होने वाले 'बिजली' का सम्पादन किया। फिर मार्च, 1947 ई. में इन्होंने इलाहाबाद को अपना निवास बनाया और 'प्रतीक' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया। 'प्रतीक' अपने जमाने की बहुत ही उल्लेखनीय पत्रिका थी, जिसके माध्यम से हिन्दी के अनेक युवा कवि, कहानीकार, निबन्धकार और आलोचक प्रकाश में आए। फरवरी, 1965 में अज्ञेयजी ने 'दिनमान' साप्ताहिक पत्र का सम्पादन आरम्भ किया और अपनी निष्ठा के बल पर छह महीने के भीतर इसे हिन्दी का अन्यतम साप्ताहिक पत्र बना दिया।

अज्ञेय को 1971 ई. में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की। इसके एक साल पहले हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग इन्हें 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित कर चुका था। 1972 में उ.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें 'विद्यावारिधि' की उपाधि प्रदान की। 1979 में अज्ञेय भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किए गए तथा 28 अगस्त, 1983 को इन्हें युगोस्लाविया का प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार 'स्वर्णमाल' दिया गया। 04 अप्रैल, 1987 को सुबह साढ़े आठ बजे के लगभग इनका स्वर्गवास हो गया।

प्रकाशित साहित्य

काव्य : भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर मुद्रा, महावृक्ष के नीचे, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ।

उपन्यास : शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी

कहानी संग्रह : विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल, ये तेरे प्रतिरूप

निबन्ध संग्रह : त्रिशंकु, आत्मनेपद, हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, सबरंग और कुछ राग, भवंती, अन्तरा, लिखि कागद कोरे, जोग लिखी, अद्यतन, आल बाल, संवत्सर

यात्रावृत्त : अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली

मैं ने कहा, पेड़

मैंने कहा, "पेड़, तुम इतने बड़े हो,
इतने कड़े हो,
न जाने कितने सौ बरसों के आँधी-पानी में
सिर ऊँचा किए अपनी जगह अड़े हो।
सूरज उगता-डूबता है, चाँद भरता-छीजता है
ऋतुएँ बदलती हैं, मेघ उमड़ता-पसीजता है;
और तुम सब सहते हुए
सन्तुलित शान्त धीर रहते हुए
विनम्र हरियाली से ढके, पर भीतर ठोठ कठैठे खड़े हो।"

काँपा पेड़, मर्मरित पत्तियाँ
बोलीं मानो, "नहीं, नहीं, नहीं, झूठा
श्रेय मुझे मत दो!
मैं तो बार-बार झुकता, गिरता, उखड़ता
या कि सूख ठूँठ हो के टूट जाता,
श्रेय है तो मेरे पैरों-तले इस मिट्टी को
जिसमें न जाने कहाँ मेरी जड़ें खोई हैं :
ऊपर उठा हूँ उतना ही आकाश में
जितना कि मेरी जड़ें नीचे दूर धरती में समाई हैं।

श्रेय कुछ मेरा नहीं, जो है इस नामहीन मिट्टी का।
और, हाँ, इन सब उगने-डूबने, भरने-छीजने,

बदलने, मलने, पसीजने,
बनने-मिटने वालों का भी :
शतियों से मैंने बस एक सीख पाई है :
जो मरण-धर्मा हैं वे ही जीवनदायी हैं।"

मैंने कहा पेड़

सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

इस कविता में कवि बता रहा है, आँधी और बारिश की सामना करते हुए तुम सैकड़ों सालों से यहाँ रह रहे हो। सूरज और चाँद कई बार आते जाते रहे। ऋतु बदले, मौसम बदले लेकिन तुम अडिग रहे। चारों और हो रहे बदलावों से अपने आप बचकर तुम खड़े हो। सिर ऊँचा करके तुम सालों से खड़े हुए हो।

पेड़ कवि से काँपकर बोला, और पत्तियाँ ऐसा हिली जैसे फुस फुसा रही हो बोली- अरे नहीं नहीं मुझे झूठा श्रेय मत दो, मेरा अपना इसमें कोई देन नहीं है। अगर मैं यहाँ आँधी, पानी सहकर खड़ा हूँ बरसों से तो इसमें मेरा अपना कोई श्रेय नहीं है। पेड़ कह रहा है- अरे, मुझे कई बार झुकना पड़ता है, गिरता है। कई बार ऐसी हुआ कि मेरी शाखायें टूट गयी है,उखड़ता है। बाढ़ आदि आते है तो मैं उखड जाता हूँ। या फिर कई बार ऐसा होता है कि मेरे शाखायें एक दम से सूख जाती है और टूटकर गिरते है। पेड़ कहता है कि मेरे पैरों तले जो ये मिट्टी है जिसमें कहाँ मेरी जड़ें खोयी है , मुझे यह भी नहीं पता। मैं यह जो दिख रहा हूँ, मेरी हरियाली दिख रहे हो, यह तो मेरा बाह्याकार है। वास्तव में जितना मैं आकाश में ऊपर उठा हूँ, उतनी ही मेरी जड़ें नीचे दूर धरती में समाई

है। एकदम मिट्टी के अंतर,धरती के अंतर। मेरी वृक्ष इतने मज़बूत है। तभी मैं यहाँ सर ऊपर करके खड़ा पाया हूँ।

मेरा कुछ श्रेय नहीं है। मेरा अगर कुछ श्रेय बनता है तो इस नाम हीन मिट्टी का है। यह नाम हीन मिट्टी ही मुझे यहाँ खड़े करने का काबिल बनाया है। केवल मिट्टी को ही श्रेय नहीं दे रहा है पेड़। पेड़ कहता है- वह उगता है, डूबता है तो उसकी ऊर्जा से ही मेरी पत्नी मेरेलिए भोजन बनाते है। जोचाँद है उसकी प्रकाश से मेरे में जान आती है। तो चाँद का भरना और छीजना भी मेरे लिए महत्त्व रखता है। और ये जो बादल है, वे उमड़ते है, पसीजते है उससे मुझे पानी मिलता है, उससे मुझे जीवन मिलता है। जो बनते है, जो मिटते है उनका भी मेरे जीवन में श्रेय है। मैं ने बस एक सीख पायी है ज़िन्दगी में जो अपने आप को नष्ट करता है वो ही दूसरों को जीवन दान देते हैं।

जो त्याग की भावना जानता है, वही दूसरों को उपकार करता है, जो खुद मिटकर दूसरों को उपकार करता है । तुम कुछ बन पाये हो तो अपने जड़ों की ओर देखो, अपनी गाँव की ओर देखो, अपनी माँ-बाप की ओर देखो। उनका जो त्याग है तुम्हें यहाँ तक पहूँचाने में सफल हुआ होगा।

इस कविता द्वारा कवि ने यशोधरा के विरह में व्याकुल मन का करुण वर्णन किया है। कविता का शुरुआत करने से पहले इस कविता के नायिका तथा नायक के बारे में जानना ज़रूरी है। सखि वे मुझसे कहकर जाते यह बात अपने सखि से बोलनेवाली यशोधरा है, जो गौतम बुद्ध की पत्नी थी। गौतम बुद्ध का पिता का नाम शुद्धोधन तथा माता का नाम महामाया था। शुद्धोधन राजा तथा महाराणी महामाया को जो पुत्र हुआ उसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। परन्तु जन्म के सात दिन बाद ही माँ का देहांत हो गया। सिद्धार्थ की मौसी

गौतमी ने उनकी लालन-पालन किया। राजकुमार सिद्धार्थ के पत्नी का नाम यशोधरा था। उनके बेटे का नाम राहुल था। समाज में फ़ैल रहे क्रूरता, हिंसा के कारण समाज से विरक्त होने का विचार उनके मन में आया। उसीका नदीजा एक दिन रात का समय शयनकक्ष में सो रही अपनी पत्नी यशोधरा तथा पुत्र राहुल को बिना बताये छुपके से घर परिवार त्याग करके विश्व में फैले अन्याय, अत्याचार, हिंसा तथा क्रूरता को समाप्त कर मानव मन में दया भाव तथा शांती निर्माण करने के उद्देश्य से निकल गये। उसके बाद जब यशोधरा को इस बात की खबर लगी तो वे बहुत व्याकुल और दुखी हो गयी। उसी दुःख भरी व्याकुलता में वह अपनी सखी के साथ बात कर रही है। और सखि को बता रही है कि हे सखि वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा अपने सखि से कह रही है कि क्या वे मुझे कहकर जाते तो क्या वे मुझे अपने पद की अर्थात् अपने मार्ग की बाधा समझते। यशोधरा को यहाँ पर समझ में नहीं आ रहा है कि वे उनसे कहकर क्यों नहीं गये।

यशोधरा के मन में सवाल पैदा होता है कि वे मुझे बहुत मानते थे। मुझ से प्रेम करते थे। मेरा सम्मान करते थे। मेरी हर बात मानते थे। ऐसे थे वे। फिर भी क्या उन्होंने पूरी तरह से मुझे पहचाना? मैं तो उन्हें ही अपने जीवन में मुख्य स्थान दिया था। उनके सिवा मेरे जीवन का कोई लक्ष्य नहीं था। उनकी हर बात को मैं ने मख्य समझा था। उनके मन में जो आता वही मैं करती थी। यहाँ पर सिद्धार्थ के प्रति यशोधरा का समर्पण भाव का प्रेम प्रकट होता है।

अगर वे मुझे बताकर जाते तो मैं खुद उनकेलिए एक क्षत्राणी की तरह स्वयं अपने प्रियतम को पलभर में ही सुसज्जित करके उन्हें रण में अर्थात् उनके लक्ष्य की तरफ भेज देती। मैं उनके पद की बाधा कभी नहीं बनती। काश! वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा अपने भाग्य को कोस रही है। सिद्धार्थ जैसे पति और उनके प्रेम को पाकर यशोधरा गर्व का अनुभव करती थी। लेकिन अब वह अपने भाग्य को कोस रही है। वह कह रही है कि मेरा भाग्य भी आज अभागा हो गया है। और पति प्रेम को लेकर जो गर्व मेरे मन में था वह विफल हो गया है। जिन्होंने मुझे प्रेम के साथ अपनाया था। उन्होंने ही मेरा त्याग कर दिया है। वही मुझे छोड़कर चले गये है। अब तो बस उनकी याद मात्र रह गयी है।

यशोधरा अपनी सखी से कहती है कि यदि वे मुझ से कहकर जाते तो शायद उनके ही नयन उन्हें निष्ठुर कहते। अब जो आँसू उनके नयन से बहते उन आँसुओं को उनका दयालू हृदय कैसे सह पाता? यदि सहकर भी वे जाते तो वे खुद पर तरस ही खाते। खुद पर पश्चताते। कवि बता रही है कि यहाँ यशोधरा को ऐसा लग रहा है कि एक तरह से अच्छा ही हुआ, वे मुझे कहकर नहीं गये। नहीं तो उनका मन उनके लक्ष्य कार्य में नहीं लगता।

यशोधरा अपनी सखि से कहती है कि वे अपने मर्ज़ी से जहाँ भी जाए वहाँ अपने मक्सद में कामयाब रहे। संपूर्ण सिद्धि अर्थात् सफलता पूर्ण ज्ञान तथा अलौकिक शक्तियां वे आनंद से, सुख से हासिल करें। इस संसार के दुःख से उन्हें दुःख न लगे। यशोधरा आगे कहती है , उन्होंने जनकल्याण हेतु, जनसिद्धि हेतु वनागमन किया है। मैं किस मुख से उन्हें उपालम्ब दूँ? अर्थात् मैं किस मुख से उन्हें शिकायत करूँ? मैं किस मुख से उन्हें उलाहना दूँ? उनके जाने से मैं अधिक दुखी, अधिक व्याकुल हो जाऊँगी। इसी भय के कारण वे मुझे बताकर नहीं गये। मेरे दुःख का, मेरे व्याकुलता का ख्याल उन्होंने किया। इसके कारण भी आज वे मुझे और भी अधिक भाने लगे है। अच्छे लगाने लगे है।

आगे यशोधरा अपने सखि से कहती है कि वे मुझे छोड़कर गये है, लेकिन एक दिन लौटकर भी आयेगे। और जब आयेगे तब मेरे लिए, इस पूरे संसार केलिए कुछ अपूर्व, अद्भुत, कुछ अनुपम, सर्वोत्तम लेकर आयेगे। मेरे रोते प्राण तब उन्हें देखेंगे। लेकिन उस समय क्या मैं उन्हें गाते-गाते , हँसते-हँसते मिलूँगी? इस प्रकार का सवाल यशोधरा के मन में रह जाता है। यशोधरा बार-बार अपने सखि से कहती है कि सखि वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा के विरह में व्याकुल और दुखी मन को प्रस्तुत करने का प्रयास कवि ने यहाँ किया है।

इस कविता द्वारा कवि ने यशोधरा के विरह में व्याकुल मन का करुण वर्णन किया है। कविता का शुरुआत करने से पहले इस कविता के नायिका तथा नायक के बारे में जानना ज़रूरी है। सखि वे मुझसे कहकर जाते यह बात अपने सखि से बोलनेवाली यशोधरा है, जो गौतम बुद्ध की पत्नी थी। गौतम बुद्ध का पिता का नाम शुद्धोधन तथा माता का नाम महामाया था। शुद्धोधन राजा तथा महाराणी महामाया को जो पुत्र हुआ उसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। परन्तु जन्म के सात दिन बाद ही माँ का देहांत हो गया। सिद्धार्थ की मौसी

गौतमी ने उनकी लालन-पालन किया। राजकुमार सिद्धार्थ के पत्नी का नाम यशोधरा था। उनके बेटे का नाम राहुल था। समाज में फ़ैल रहे क्रूरता, हिंसा के कारण समाज से विरक्त होने का विचार उनके मन में आया। उसीका नदीजा एक दिन रात का समय शयनकक्ष में सो रही अपनी पत्नी यशोधरा तथा पुत्र राहुल को बिना बताये छुपके से घर परिवार त्याग करके विश्व में फैले अन्याय, अत्याचार, हिंसा तथा क्रूरता को समाप्त कर मानव मन में दया भाव तथा शांती निर्माण करने के उद्देश्य से निकल गये। उसके बाद जब यशोधरा को इस बात की खबर लगी तो वे बहुत व्याकुल और दुखी हो गयी। उसी दुःख भरी व्याकुलता में वह अपनी सखी के साथ बात कर रही है। और सखि को बता रही है कि हे सखि वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा अपने सखि से कह रही है कि क्या वे मुझे कहकर जाते तो क्या वे मुझे अपने पद की अर्थात् अपने मार्ग की बाधा समझते। यशोधरा को यहाँ पर समझ में नहीं आ रहा है कि वे उनसे कहकर क्यों नहीं गये।

यशोधरा के मन में सवाल पैदा होता है कि वे मुझे बहुत मानते थे। मुझ से प्रेम करते थे। मेरा सम्मान करते थे। मेरी हर बात मानते थे। ऐसे थे वे। फिर भी क्या उन्होंने पूरी

तरह से मुझे पहचाना? मैं तो उन्हें ही अपने जीवन में मुख्य स्थान दिया था। उनके सिवा मेरे जीवन का कोई लक्ष्य नहीं था। उनकी हर बात को मैं ने मख्य समझा था। उनके मन में जो आता वही मैं करती थी। यहाँ पर सिद्धार्थ के प्रति यशोधरा का समर्पण भाव का प्रेम प्रकट होता है।

अगर वे मुझे बताकर जाते तो मैं खुद उनकेलिए एक क्षत्राणी की तरह स्वयं अपने प्रियतम को पलभर में ही सुसज्जित करके उन्हें रण में अर्थात् उनके लक्ष्य की तरफ भेज देती। मैं उनके पद की बाधा कभी नहीं बनती। काश! वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा अपने भाग्य को कोस रही है। सिद्धार्थ जैसे पति और उनके प्रेम को पाकर यशोधरा गर्व का अनुभव करती थी। लेकिन अब वह अपने भाग्य को कोस रही है। वह कह रही है कि मेरा भाग्य भी आज अभागा हो गया है। और पति प्रेम को लेकर जो गर्व मेरे मन में था वह विफल हो गया है। जिन्होंने मुझे प्रेम के साथ अपनाया था। उन्होंने ही मेरा त्याग कर दिया है। वही मुझे छोड़कर चले गये है। अब तो बस उनकी याद मात्र रह गयी है।

यशोधरा अपनी सखी से कहती है कि यदि वे मुझ से कहकर जाते तो शायद उनके ही नयन उन्हें निष्ठुर कहते। अब जो आँसू उनके नयन से बहते उन आँसुओं को उनका दयालू ह्रदय कैसे सह पाता? यदि सहकर भी वे जाते तो वे खुद पर तरस ही खाते। खुद पर पश्चताते। कवि बता रही है कि यहाँ यशोधरा को ऐसा लग रहा है कि एक तरह से अच्छा ही हुआ, वे मुझे कहकर नहीं गये। नहीं तो उनका मन उनके लक्ष्य कार्य में नहीं लगता।

यशोधरा अपनी सखि से कहती है कि वे अपने मर्ज़ी से जहाँ भी जाए वहाँ अपने मक्सद में कामयाब रहे। संपूर्ण सिद्धि अर्थात् सफलता पूर्ण ज्ञान तथा अलौकिक शक्तियां वे आनंद से, सुख से हासिल करें। इस संसार के दुःख से उन्हें दुःख न लगे। यशोधरा आगे कहती है , उन्होंने जनकल्याण हेतु, जनसिद्धि हेतु वनागमन किया है। मैं किस मुख से उन्हें उपालम्ब दूँ? अर्थात् मैं किस मुख से उन्हें शिकायत करूँ? मैं किस मुख से उन्हें उलाहना दूँ? उनके जाने से मैं अधिक दुखी, अधिक व्याकुल हो जाऊँगी। इसी भय के कारण वे मुझे बताकर नहीं गये। मेरे दुःख का, मेरे व्याकुलता का ख्याल उन्होंने किया। इसके कारण भी आज वे मुझे और भी अधिक भाने लगे है। अच्छे लगाने लगे है।

आगे यशोधरा अपने सखि से कहती है कि वे मुझे छोड़कर गये है, लेकिन एक दिन लौटकर भी आयेगे। और जब आयेगे तब मेरे लिए, इस पूरे संसार केलिए कुछ अपूर्व, अद्भुत, कुछ अनुपम, सर्वोत्तम लेकर आयेगे। मेरे रोते प्राण तब उन्हें देखेंगे। लेकिन उस समय क्या मैं उन्हें गाते-गाते , हँसते-हँसते मिलूँगी? इस प्रकार का सवाल यशोधरा के मन में रह जाता है। यशोधरा बार-बार अपने सखि से कहती है कि सखि वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा के विरह में व्याकुल और दुखी मन को प्रस्तुत करने का प्रयास कवि ने यहाँ किया है।

पद

1. मेरो मन अनत कहाँ सुख पावे।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवे।

कमल नयन को छांड़ि महातम, और देव कों ध्यावे।

परम गंग को छांड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावे।

जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल भावे।।

शब्दार्थ : - मेरो - मेरा; अनत- अन्यत्र; पै - पर; दुश्मति - दुर्बुद्धि; खनावै - खोदना

व्याख्या :-इस पद में सूरदास बताते हैं कि उनका मन पूर्णतः कृष्ण में तल्लीन हो गया है। अन्यत्र कहीं भी उन्हें सुख-चैन उपलब्ध नहीं है। उनका आसरा और आधार और कोई नहीं

है। वे श्रीकृष्ण के बिना और किसी की कामना भी नहीं करते है। सूरदास की अनन्य कृष्ण भक्ति ही इस पद में गूँजती है।

सूर का कहना है, हे कृष्ण मेरे मन को तुम्हारे सिवा अन्यत्र कहाँ से सुख मिलेगा? जहाज से उड़ी चिड़िया को आखिर जहाज पर ही आना पड़ेगा। उसे कोई आसरा, आलम्बन नहीं है। प्यासा आदमी पवित्र गंगा को त्यागकर कूप खोदने की कोशिश करेगा तो उसकी दुर्गति ही कही जाएगी। जिस भौंरे ने एक बार कमल-रस पिया है वह फिर किस लालच में करील फल चखने जाएगा? कमलनयन कृष्ण ही सबकुछ एवं सर्वोत्तम है।

2. जा दिन मन पंछी उड़ि जैहें।

ता पिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहें।
या देही गरब न करिये, स्यार-कागगिध खैहें।
तीननि मैं तन कृमि, कै बिष्टा के ह्वै खाक उड़ैहें।
कहं वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहं रंग-रूप दिखैहें।
जिन लोगनि सों नेह करति है, तेई देखि घिनैहें।
घर के कहत सबारे काढ़ो, भूत होह धर खैहें।
जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यो, देवी-देव मनेहें।
तेई ले खोपरी बांस दे, सीस फोरि बिखरे हैं।
अजहूँ मूढ़ करो सतसंगति, सन्तनि में कछु पैहें।
नर बपु धारि नाहिं जन हरि को, जम की मार सो खैहों।
सूरदास भगवंतु भजन बिनु बृथा सु जनम गवैहें।।

शब्दार्थ : - सबै - सारा; पात- पत्ता; नीर- पानी; सोभा- शोभा; नेह- स्नेह; भगवंतु- भगवान।

व्याख्या :-इस पद में सूरदास जी ने मानव जीवन की सच्चाई की बयान की है। सूरदास कहते हैं कि हे मन! शरीर से जिस दिन जीवात्मा रूपी पंछी बाहर निकल जायेगा, उस दिन शरीर रूपी वृक्ष के सभी पत्ते झड़ जायेंगे। शरीर पर गर्व न करो। क्योंकि मर जाने के बाद यही शरीर सियार, काग और गिध खाएँगे। शरीर की तीन गति (आत्मा- परमात्मा-जीव) में शरीर गाड़ जाने से कीडा बनेगा। जला दिया जाएगा तो राख हो जाएगा। सौन्दर्य, रंग, रूप कहीं भी दिखेगा नहीं। जीवन भर अपने परिवार के लिए खटता रहा उसके शरीर छोड़ने के बाद उसके वही परिवार वाले कहते हैं कि इसके मृत शरीर को जितनी जल्दी हो घर के बाहर निकालो, कहीं ऐसा न हो इसकी आत्मा यहीं भूत बनकर रह जाये और घर के लोगों को खाना शुरु कर दे। जिन औलादों को दीर्घायुष्मान बनाए गए थे वे ही बाँस लेकर प्रहार कर खोपडी फोट देंगे। सूरदास का कहना है कि सत्संग से ही परलोक का सहारा प्राप्त है । मात्र शरीर धारण करने से भगवान का भक्त नहीं होता। मनुष्य का श्रेष्ठ जन्म भगवत् भजन के बिना व्यर्थ हो जाएगा।

3. मैया, कबहिं बढ़ेगी चोटी?

किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

तू जो कहति बल की बेनी ज्यों है है लांबी-मोटी।

काढत-गुहत न्हवावत जैहै नागिनि सी भुई लोटी।

काचौ दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।

सूरदस चिरजीवी दौउ भैया, हरि-हलधर की जोटी।।

शब्दार्थ : - मैया - माँ; कबहिं-कब; मेंहि - मुझे; अजहूँ- आज भी, बल-बलराम; जोटी- जोड़ी।

व्याख्या :-इस पद में सूरदास कृष्ण की बाललीला का वर्णन करते हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं - मैया ! मेरी चोटी कब बढ़ेगी? कितनी बार मुझे दूध पीते-पीते हो गई पर मेरी यह चोटी आज भी छोटी की छोटी बनी हुई है। यह तो अब भी छोटी ही है। तू जो यह कहती है कि दाऊ भैया की चोटी के समान यह भी लम्बी और मोटी हो जाएगी। संभवतः इसीलिए तू मुझे नित्य नहलाकर बालों को कंघी से संवारती है, चोटी गूँथती है, जिससे चोटी बढ़कर नागिन जैसी लंबी हो जाए। कच्चा दूध भी इसीलिए पिलाती है। तू मुझे माखन व रोटी भी नहीं देती। इतना कहकर कृष्ण रूठ जाते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि बलराम -श्रीकृष्ण की जोड़ी अनुपम है, ये दोनों भाई चिरजीवी हों । हरि हलधर की ये जोड़ी सदा बनी रहे।

1.हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ।।

अर्थ - यह दोहा उस समय के बाद का है जब हनुमान को मैनाक पर्वत विश्राम करने को कहता है। तब हनुमान जी क्या करते हैं उसका वर्णन यहां पर तुलसीदास ने किया है। हनुमान जी मैनाक पर्वत को हाथ से छू बस देते है और कहते हैं भाई मुझे भगवान राम के काम करे बिना विश्राम कहाँ।

2.राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।

आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ।।

अर्थ - यह श्लोक सुरसा के द्वारा कहे गए वचन को बताता है और के उद्बोधन में तुलसीदास ने इसे लिखा है। सुरसा कहती ही तुम श्री रामचंद्र जी का सभी कार्य करोगे, क्योकि तुम बल बुद्धि के निधान हो अर्थात भंडार हो। यह आशीर्वाद देकर सुरसा जो है वहाँ से चली गई, तब हनुमान जी हर्षित होकर वहां से आगे चले गए।

3.पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार ।

अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ।।

अर्थ - यह तुलसीदास का दोहा उस समय का है जब हनुमान नगर में अर्थात लंका में प्रवेश करने की सोचता है। हनुमान नगर के बहुत सारे रखवारो को देखकर मन में विचार करते हैं की, अत्यंत छोटा रूप धारन करके रात को नगर में प्रवेश किया जाए।

अकाल में दूब

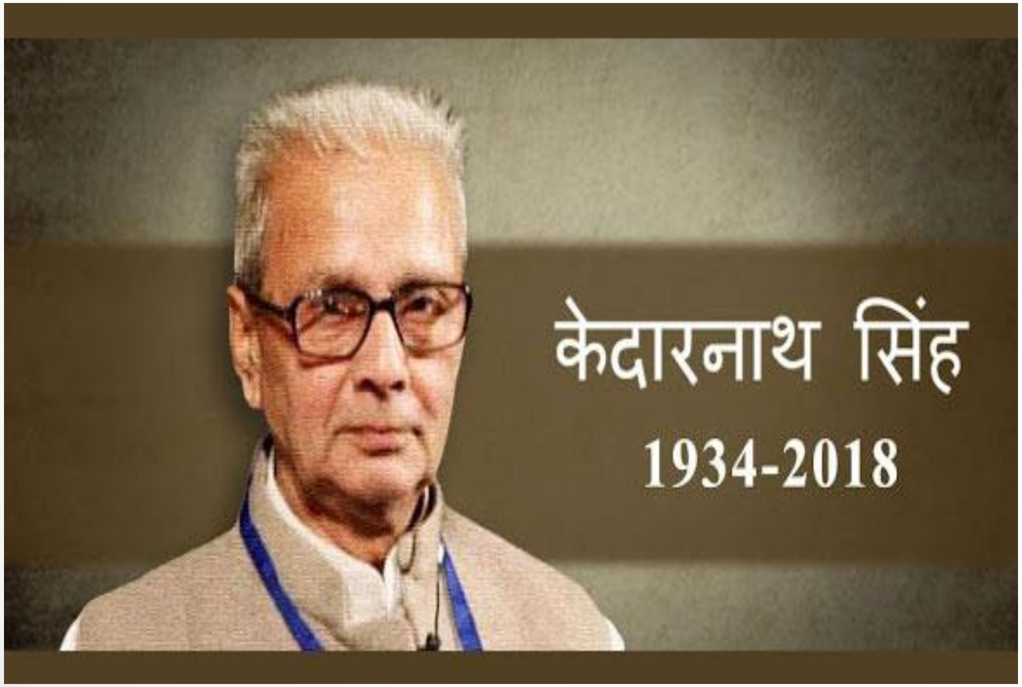

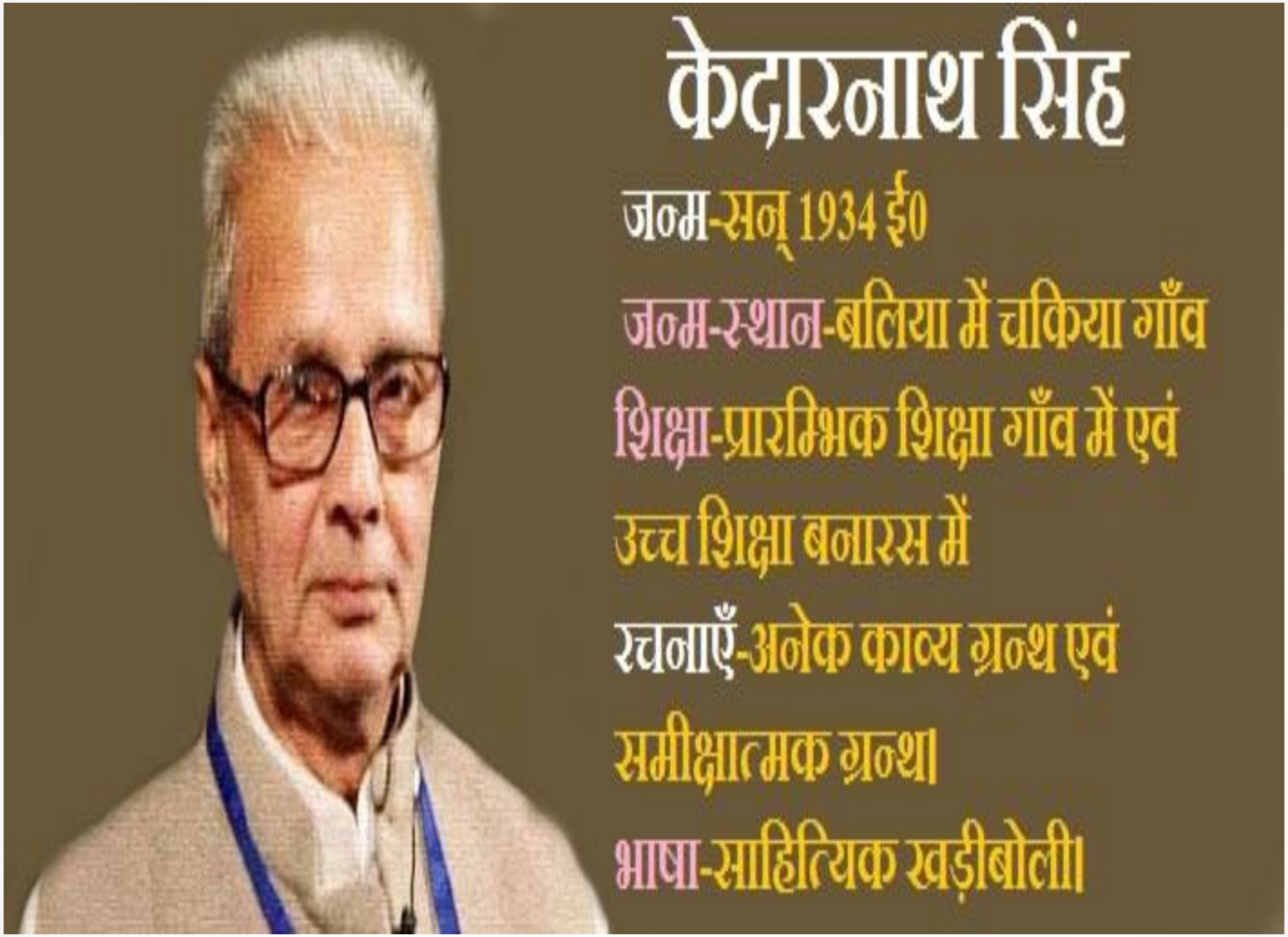
केदारनाथ सिंह
जन्म-सन् 1934 ई0
जन्म-स्थान-बलिया में चकिया गाँव
शिक्षा-प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में एवं
उच्च शिक्षा बनारस में
रचनाएँ-अनेक काव्य ग्रन्थ एवं
समीक्षात्मक ग्रन्थ।
भाषा-साहित्यिक खड़ीबोली।

जीवन परिचय

केदारनाथ सिंह का जन्म ७ जुलाई १९३४ ई॰ को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के चकिया गाँव में हुआ था। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९५६ ई॰ में हिन्दी में एम॰ए॰ और १९६४ में पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की। उनका निधन १९ मार्च २०१८ को दिल्ली में उपचार के दौरान हुआ। कुछ वक़्त गोरखपुर में हिंदी के प्रध्यापक रहे। उन्होंने जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा केंद्र में बतौर आचार्य और अध्यक्ष काम किया था।

पुरस्कार

1989 में उनकी कृति 'अकाल में सारस' को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। इसके अलावा उन्हें व्यास सम्मान, मध्य प्रदेश का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, उत्तर प्रदेश का भारत-भारती सम्मान, बिहार का दिनकर सम्मान तथा केरल का कुमार आशान सम्मान मिला था। वर्ष 2013 में उन्हें प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस पुरस्कार से सम्मानित होने वाले वह हिन्दी के १०वें साहित्यकार थे।

मुख्य कृतियाँ

•कविता संग्रह
•अभी बिल्कुल अभी (1960)
•जमीन पक रही है(1980)
•यहाँ से देखो(1983)
•बाघ(1996),(पुस्तक के रूप में)
•अकाल में सारस(1988)
•उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ(1995)
•तालस्ताय और साइकिल(2005)
•सृष्टि पर पहरा (2014)

•आलोचना
•कल्पना और छायावाद
•आधुनिक हिंदी कविता में बिंबविधान
•मेरे समय के शब्द
•मेरे साक्षात्कार

•संपादन
•ताना-बाना (आधुनिक भारतीय कविता से एक चयन)
•समकालीन रूसी कविताएँ
•कविता दशक
•साखी (अनियतकालिक पत्रिका)
•शब्द (अनियतकालिक पत्रिका)

अकाल में दूब

अकाल में दूब
केदारनाथ सिंह

भयानक सूखा है
पक्षी छोड़कर चले गए हैं
पेड़ों को
बिलों को छोड़कर चले गए हैं चींटे
चींटियाँ
देहरी और चौखट
पता नहीं कहाँ-किधर चले गए हैं
घरों को छोड़कर

भयानक सूखा है
मवेशी खड़े हैं
एक-दूसरे का मुँह ताकते हुए

कहते हैं पिता
ऐसा अकाल कभी नहीं देखा
ऐसा अकाल कि बस्ती में
दूब तक झुलस जाए
सुना नहीं कभी
दूब मगर मरती नहीं -
कहते हैं वे
और हो जाते हैं चुप

निकलता हूँ मैं
दूब की तलाश में
खोजता हूँ परती-पराठ
झाँकता हूँ कुँओं में
छान डालता हूँ गली-चौराहे
मिलती नहीं दूब
मुझे मिलते हैं मुँह बाए घड़े
बाल्टियाँ लोटे परात
झाँकता हूँ घड़ों में
लोगों की आँखों की कटोरियों में
झाँकता हूँ मैं
मिलती नहीं
मिलती नहीं दूब

अंत में
सारी बस्ती छानकर
लौटता हूँ निराश
लाँघता हूँ कुएँ के पास की
सूखी नाली
कि अचानक मुझे दिख जाती है
शीशे के बिखरे हुए टुकड़ों के बीच
एक हरी पत्ती
दूब है
हाँ-हाँ दूब है -
पहचानता हूँ मैं

लौटकर यह खबर
देता हूँ पिता को
अँधेरे में भी
दमक उठता है उनका चेहरा
'है - अभी बहुत कुछ है
अगर बची है दूब...'
बुदबुदाते हैं वे

फिर गहरे विचार में
खो जाते हैं पिता

अरुण यह मधुमय देश हमारा

NOTES

“अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा”

भारत में सूर्योदय का दृश्य बड़ा ही रमणीय है। प्रातः काल सूर्य जब आकाश में उदित होता है तो चारों और अरुणिम अर्थात लालिमा युक्त प्रकाश फैल जाता है।

यहां सूर्य प्रतीक है- ज्ञान का क्योंकि भारत भूमि पर ही सर्वप्रथम ज्ञान, योग, सभ्यता, अध्यात्म, दर्शन का जन्म हुआ जिससे संपूर्ण विश्व आलोकित हुआ है। साथ ही यहाँ इस ओर भी संकेत किया गया है कि भारतीयों के मन में दया, प्रेम, करुणा के भाव विद्यमान हैं अर्थात भारतवासियों के मन में जो बंधुत्व और प्रेम, अपनत्व का भाव है वही उनकी संस्कृति को मधुमय बनाता है । इसलिए यहाँ भारत को “मधुमय देश” कहकर संबोधित किया गया है। अपने इन्हीं गुणों के कारण यहाँ पर आने वाला अनजान व्यक्ति विशेष भी अपने आप को कभी पराया महसूस नहीं करता। भारत की बंधुत्व की ओर संकेत करते हुए प्रसाद जी ने कहा है कि भारत अनंत काल से बाहर से आए हुए लोगों का आश्रय स्थल रहा है। अनेकानेक विदेशियों, शरणार्थियों ने भारत में आकर शरण ग्रहण की है और भारत ने उन्हें हृदय से अपनाया है। यह भारतवासियों की विशेषता है। भारतवासी अत्यंत संवेदनशील, भावुक प्रवृत्ति के हैं वे दूसरों के दुखों को देखकर करुणा से द्रवित हो जाते हैं और उन्हें अपना लेते हैं, आश्रय देतें हैं इसलिए यहाँ आकर अनजान लोगों को भी सहारा मिल जाता है।

**“सरल तामरस गर्भ विभा पर,नाच रही तरुशिखा मनोहर ।
छिटका जीवन हरियाली पर,मंगल कुमकुम सारा।”**

प्रात:काल सूर्य आकाश में उदित होने पर ऐसा लगता है मानो चारों और जागरण के गीत गुंजित हो उठे हैं। समस्त प्रकृति जीव-जंतु, पेड़-पौधे, फूल-पत्तियांँ, जाग उठते हैं। सूर्य की किरणें पेड़ की शिखा पर नृत्य करती हुई और कमल की पंखुड़ियों पर अपनी आभा बिखरती हुई नजर आती हैं अर्थात पेड़ की सबसे ऊंची शाखा पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो पेड़ के पत्तों पर स्वर्णिम आभा तो फैल जाती है साथ ही साथ जब हवा चलती है और पत्तों में हलचल होती हैं तो ऐसा लगता है मानो सूर्य की किरणें वृक्ष की सबसे ऊंची शिखा पर नृत्य कर रही हों। कवि ने यहाँ बड़े ही मनोहारी ढंग से प्रकृति का चित्रण किया है। भारत भूमि शस्य श्यामला है। चारों ओर छायी हुई हरियाली उसकी समृद्धि और संपन्नता का परिचायक है। प्रातःकालीन सूर्य ने मानो (भारतीयों के) जीवन रूपी हरियाली पर अपना सारा मंगल कुमकुम छिटका दिया हो। सरल शब्दों में कहें तो भारत धन्य धान्य से सम्पन्न देश है। जब सूर्य की रक्तिम किरणें इन पर पड़ती हैं, तो ऐसा लगता है मानो सूरज ने अपना सारा मांगलिक कुमकुम भारतीयों पर बिखेर दिया हो अर्थात भारतवासियों के हरित समृद्ध जीवन को और खुशहाल बना दिया हो।

“लघु सुरधनु से पंख पसारे,शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुंह किए,समझ नीड़ निज प्यारा।।”

आकाश में विचरते इंद्रधनुषी पंखों वाले पंछी, मलय पर्वत से आने वाले शीतल-सुगंधित पवन (मलय पर्वत पर चंदन के वृक्ष होने के कारण उस ओर से आने वाली हवा शीतल और सुगंधित होती है।) का आश्रय लेकर जिस दिशा (भारत की ओर) में मुंह किए हुए उड़ते दिखाई देतें हैं तो ऐसा लगता है मानो वे अपने प्यारे घोंसले की ओर जाने को उत्सुक हैं। यहाँ पर हम खगों को विदेशियों का प्रतीक कह सकते हैं और वह जिस ओर से मुंह करके अर्थात एक विश्वास के साथ भारत की ओर उड़ते हुए चले आ रहे हैं उससे ऐसा लगता है मानो उनके हृदय में यह भरोसा है कि भारत में, उन्हें आश्रय जरूर मिलेगा। भारत ही उनका प्यारा घर है। यह देश उन्हें “नीड़ निज प्यारा “प्रतीत होता है।

“बरसाती आँखों के बादल,बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की,पाकर जहाँ किनारा।।”

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में, बारिश होने पर धरती प्रकृति, जीव -जंतुओं की प्यास बुझ जाती है। उसी प्रकार भारतवासियों के हृदय भी करुणा के जल से भरे हुए हैं जो किसी भी प्राणी मात्र को कष्ट में या दुख में नहीं देख सकते और किसी का कष्ट और दुख सुनकर ही उनकी आँखों में करुणा के बादल उमड़ पड़ते हैं और उनकी आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लग जाते हैं अर्थात भारतवासी दुखी जनों को सांत्वना देने में, थके हुओं को सहारा देने में समर्थ हैं। अनन्त, अथाह, अशांत महासागर भी भारत की सीमाओं से टकराकर शांत हो जाता है। ऐसा लगता है मानो विचलित सागर को भी, भारत की सीमाओं का, स्पर्श कर के ही शांति का आभास होता है। कवि का कल्पना कौशल अद्भुत है। भारत एक शांतिप्रिय देश है और विश्व में भारत की छवि सदैव शांतिदूत की ही रही है। यहाँ पर सागर और किनारों के माध्यम से यह बात प्रसाद जी ने बहुत सुंदर ढंग से चित्रित की है। भारत का समुद्र तट बहुत विशाल है । हमारा देश महासागरों से घिरा हुआ है लेकिन जब इन महासागरों की लहरें भारत के तट से टकराती हैं और शांत हो जाती हैं तो ऐसा लगता है मानो उस अशांत समुंद्र को भी यहाँ आकर ही सहारा मिला है। अर्थात भूले भटके लोगों को, यहाँ विश्राम मिलता है, मंजिल मिल जाती है।

“हेम कुम्भ ले उषा सवेरे,भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊँघते रहते जब,जगकर रजनी भर तारा।।”

ऊषा रूपी नायिका सूर्य रूपी हेम कुम्भ (सोने का घड़ा) लेकर प्रातःकाल भारतीयों पर सुख ढुलकाती हुई प्रतीत होती है। सूरज उदित होने पर चारों ओर, प्रकृति, जीव- जंतु, मानव प्रसन्न दिखाई देते हैं ऐसा लगता है मानो ऊषा नागरी ने सभी भारतीयों पर सुख का घड़ा उड़ेल दिया हो। इतना ही नहीं जैसे -जैसे सूर्य आसमान में चढ़ता है वैसे-वैसे आकाश में टिमटिमाते तारे छिपने लगते हैं। इस दृश्य का मनभावन वर्णन करते हुए कवि कहते है कि ऐसा लगता है मानो तारे रात भर जागे हैं और जागने के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वे नींद में ऊँघ रहे हो। यहाँ उषा का मानवीकरण किया गया है। सूर्य को सोने का घड़ा कहकर उसका सुंदर रूपक कवि ने बांधा है।

अंत में हम कह सकते हैं कि इस गीत में प्रसाद जी की राष्ट्रीयता की भावना दृष्टिगोचर होती है। एक विदेशी राजकुमारी के मुख से भारत की महानता का गुणगान करवा कर, वे यह संदेश देना चाहते हैं कि किस प्रकार दूर देश से आए हुए विदेशी भी, भारत का सम्मान करते हैं ।भारत उनकी दृष्टि में कितना गौरवशाली है, तो हमें भी अपने देश पर गर्व होना चाहिए ।

अरुण यह मधुमय देश हमारा
कवि: जयशंकर प्रसाद
क) “अरुण यह मधुमय देश हमारा ! ………… मंगल कुंकुम सारा |”
१) अनजान क्षितिज को सहारा मिलने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर: कवि कहते हैं कि भारत में अनजान क्षितिज (धरती और आकाश के मिलने का काल्पनिक स्थान) को भी सहारा मिल जाता है अर्थात यहाँ अनजान, अपरिचित तथा दूर से आए हुए लोगों को भी सहारा मिलता है | भारत देश अनंत काल से ही संसार के लोगों के लिए आश्रय स्थल रहा है | भूतकाल में अनेक देशों और धर्मों के लोगों को विभिन्न कारणों से अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी | उन्हें पूरे संसार में कहीं स्थान नहीं मिला किन्तु भारत भूमि ने उन्हें अपनाया | भारत का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है |

२) पेड़ों की शाखाएँ (तरु-शिखा) नाचती हुई कब प्रतीत होती हैं ?
उत्तर: प्रातःकाल होते ही सूर्य का प्रकाश पेड़ों की शाखाओं पर पड़ता है | वहाँ से छन-छनकर वह चारों तरफ फ़ैलने लगता है | उस समय सूर्य का प्रकाश लाल होता है व वह पेड़ को हर तरफ से घेर लेता है | उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पेड़ की शाखाएँ कमल के फूल के बीच प्रसन्न होकर नाच रही हैं |
३) पद्य खंड में "मंगल-कुंकुम" शब्द का प्रयोग किसके लिए हुआ है ?
उत्तर: पद्य खंड में मंगल-कुंकुम शब्द का प्रयोग सूर्य की लाल किरणों के लिए हुआ है | सुबह-सुबह जब सूर्य का प्रकाश फैलता है तो उसकी किरणें पेड़ों से छन-छन कर धरती पर पहुँचती हैं | धरती की हरियाली पर जब सूर्य की ये लाल किरणें बिखरती हैं तो ऐसा लगता है जैसे किसी ने पूरी धरती पर कुंकुम बिखेर दिया हो |

4) **प्रस्तुत कविता कौन गा रहा है और किस भाव से ओत-प्रोत होकर गा रहा है ?**
उत्तर: प्रस्तुत कविता सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की पत्नी कार्नेलिया गा रही है | वह एक यूनानी है किंतु विवाह के पश्चात उसे भारत आना पड़ा | भारत की प्राकृतिक शोभा और संस्कृति से वह अत्यधिक प्रभावित हो जाती है | देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत होकर वह यह कविता गा रही है | छायावादी शैली में रचित इस गीत में देश-प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है |

ख) “लघु सुरधनु-से पंख पसारे ……………………………….. पाकर जहाँ किनारा |”

) प्रस्तुत कविता किस रचना से ली गयी है ? कवि का परिचय दो |
उत्तर : प्रस्तुत कविता श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित ‘चन्द्रगुप्त’ नामक नाटक से ली गयी है | इसके कवि जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार और निबंधकार हैं | इनके नाटकों और कविताओं को बहुत लोकप्रियता मिली है | उनकी रचना कामायनी को आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है |

2. खगों के भारत को प्यारा नीड़ समझने का क्या तात्पर्य है?
उत्तर: सदियों से हमारा देश विदेशियों के लिए आश्रय स्थल रहा है | जिनको संसार में कहीं आश्रय नहीं मिला, भारत भूमि ने उन्हें आश्रय दिया | अनेक धर्मों और देशों के लोग भारत में आए और यहाँ घुल-मिल गए | यहाँ खगों से तात्पर्य विदेशियों से है, जिन्हें हमेशा भारत भूमि पर विश्वास होता है कि उन्हें संसार में कहीं रहने का स्थान मिले न मिले, भारत में जरूर मिलेगा | इसलिए वे भारत को अपना प्यारा नीड़ समझते हैं |
3) बरसाती आँखों के बादल क्या बन जाते हैं ?
उत्तर: कवि कह रहे हैं कि बरसाती आँखों के बादल करुणा से भरे जल में बदल जाते हैं | भारत के वर्षा ऋतु के बादल ऐसे बरसते हैं मानो उनमें से करुणा का जल बरस रहा हो, अर्थात भारतवासियों के ह्रदय में दया तथा करुणा के गुण हैं | वे दूसरों के कष्ट नहीं देख सकते | दूसरों के दुःख देखकर उनकी आँखें इस तरह आँसुओं से भर जाती हैं, जैसे वर्षा ऋतु में बादल पानी से भरे होते हैं | भारतीय संस्कृति में करुणा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कवि ने उक्त पंक्तियाँ लिखी हैं |

4) अनंत लहरों के किनारा पाने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर: यहाँ अनंत लहरों का प्रयोग करके कवि समुद्र की ओर संकेत कर रहे हैं | भारत का समुद्र तट बहुत बड़ा है | अरब सागर, हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी इन तीनों की सीमा भारत के तट पर समाप्त हो जाती है | इसलिए कवि लिखते हैं कि इस अनंत दिखाई देने वाले समुद्र को भी भारत में आकर किनारा मिल जाता है |

ग) हेम-कुम्भ ले उषा सवेरे .... अरुण यह मधुमय देश हमारा |

1) उषा किस तरह कवि के सुख को बढ़ा रही है ?

उत्तर: सुबह का वातावरण बड़ा मनमोहक होता है | चारों ओर सूर्य की सुनहरी किरणें फैली हुई होती हैं | ऐसा लगता है जैसे उषा रूपी सुंदरी हेम-कुम्भ अर्थात सोने का घड़ा (सूर्य) लेकर निकली हो जिसमें से वह सभी पर सुखों की वर्षा कर रही है | प्रातः काल का यह वातावरण कवि का सुख बढ़ा रहा है |

2) हेम-कुम्भ से क्या तात्पर्य है ?
उत्तर: यहाँ हेम-कुम्भ शब्द सूर्य के लिए प्रयोग किया गया है | प्रातः काल में चारों तरह सूर्य की सुनहरी किरणें फैली हुई होती है | धरती पर फैली यह किरणें मनुष्य को बहुत सुखमय लगती है | इसलिए कवि को ऐसा आभास होता है जैसे उषा हेम-कुम्भ अर्थात सोने के घड़े (सूर्य) को लेकर धरती पर सुखों की वर्षा कर रही है |

3) तारों के ऊँघने का क्या अर्थ है ?
उत्तर: सुबह होते ही चारों तरफ सूर्य की किरणें फ़ैलने लगती हैं | रात भर टिमटिमाने के बाद तारे सूर्य के इस बढ़ते प्रकाश में धुँधले पड़ने लगते हैं | कवि इसे ही काव्यात्मक रूप देते हुए लिखते हैं कि तारें रात भर जागे हैं | अब उन्हें इतनी नींद आ रही है कि वह किसी नशा किये हुए व्यक्ति की तरह ऊँघ रहे हैं | यहाँ तारों के धुँधला पड़ने को कवि ने ऊँघना कहा है |

4) कवि भारत देश को मधुमय क्यों कह रहा है ?

उत्तर: मधुमय का अर्थ होता है मिठास से भरा हुआ | हमारा देश भारत भी मधुर और सुंदर है | यहाँ के लोग सभी को अपना लेते हैं, चाहे वे संसार के किसी भी कोने से हों | सभी निराश्रितों को यहाँ आश्रय मिलता है | भारत के लोग दया और करुणा के सागर हैं | भारत आकार में विशाल, धन-धान्य से संपन्न और प्राकृतिक सुंदरता में अद्वितीय है | यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य मनुष्य जीवन को सुखमय बना देता है | इन सभी कारणों से कवि भारत देश को मधुमय कह रहा है |

कविता का केंद्रीय भाव :

'अरुण, यह मधुमय देश हमारा' देशप्रेम की भावना से ओत प्रोत कविता है | इसके कवि श्री जयशंकर प्रसाद ने एक विदेशी राजकुमारी द्वारा भारत की महानता तथा प्राकृतिक सौंदर्य का गुणगान कराया है | सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की पत्नी कार्नेलिया जो एक यूनानी है, वह भारतीयों की विश्व बंधुत्व की भावना से प्रभावित होकर लिख रही है कि भारत देश संसार के प्रत्येक मनुष्य का आश्रय स्थल है | जिन्हें कहीं स्थान न मिले, उनका भी यहाँ ह्रदय खोलकर स्वागत होता है | भारतवासी दयालु हैं व उनमें करुणा का भाव है | भारत की प्राकृतिक सुंदरता अद्वितीय है | यहाँ का मौसम मनुष्य को सुख देने वाला है | कार्नेलिया भारत देश को मधुमय अर्थात मिठास से भरा हुआ कहती है |

1.भारत ने हमेशा अपनी शरण में आनेवालों को स्थान दिया है | इसपर अपने विचार लिखिए |

उत्तर: इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब लोगों को प्रतिकूल परिस्थितिओं के कारण अपना देश छोड़ना पड़ा | पूरे संसार में उन्हें कहीं स्थान नहीं मिला किन्तु भारत की भूमि ने उन्हें अपनाया | चाहे पारसी हो या यहूदी, एक बार भारत की शरण में आने के बाद यह देश उनका उतना ही हो गया जितनी उनकी जन्मभूमि थी | अनेक धर्मों के लोग भारत आए, भारत में फले-फूले तथा अब वो भारत के नागरिक बन चुके हैं | हमारे देश में वो इस तरह घुल-मिल चुके हैं कि कोई अब बता ही नहीं सकता कि उनके पूर्वज किसी और देश से थे | इस प्रकार शरण आनेवालों को स्थान देना हमारे देश की महान संस्कृति का हिस्सा है |

****

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - जुही की कली

सारांश

'जुही की कली' 1916 में लिखी निराला की प्रथम कविता है। छायावाद की सभी विशेषताएँ इस कविता में हम देख सकते हैं। इसमें मुक्त प्रेम की पूजा के साथ प्रकृति सौन्दर्य की आराधना भी है। इस कविता में प्रकृति सौन्दर्य के साथ-साथ रागात्मक संबंध की अभिव्यक्ति भी हुई है। श्रृंगार पक्ष के अतिरिक्त इस कविता का आध्यात्मिक पक्ष भी सशक्त है। कली की सुप्ति से लेकर जागरण और मिलन की वर्णित स्थितियों में आत्मा की रहस्यानुभूति की अवस्था का संकेत है। कविता की अंतिम परिणति में आत्म -तल्लीनता का भाव है। इस दृष्टि में कली आत्मा का और पवन परमात्मा का प्रतीक है।

सौभाग्यवती कली वसंत की रात में अलसाई दशा में वन -वल्लरी पर पत्रांक में सोती है। वह प्रेम स्वप्न में डूबी हुई है। उसका अनन्य प्रियतम पवन परदेश में है। चाँदनी रात में पवन को अपनी प्रिया कली की याद आयी। वह कली से मिलने के लिए आतुर होता है। फिर क्या कहना। वह नदी, वन, उपवन, पर्वत, तालाब तथा लताकुंजों को पार करता हुआ प्रिया के पास पहुँच जाता है।

लेकिन इधर नायिका कली सोई पड़ी है। नायक पवन उसके गालों को चूमकर जगाने का प्रयत्न करता है। लेकिन यौवन

की मदिरा पीकर उन्मत्त पड़ी कली जाग नहीं उठती। निष्ठुर नायक दीवाना होकर लता को झकझोरता है। वह कली की पंखुड़ियों को मसल देता है। कली एकदम चौंक पड़ती है। चकित होकर चारों ओर देखने लगी। पवन को अपनी शय्या के निकट देखकर वह लज्जा से सिर नवाकर हँस पड़ती है। फिर प्रिय के प्रेमपूर्वक खेल में खिल उठती है। वह अपने प्रिय के साथ रंग-रेलियों में डूब जाती है।

नयी नारी

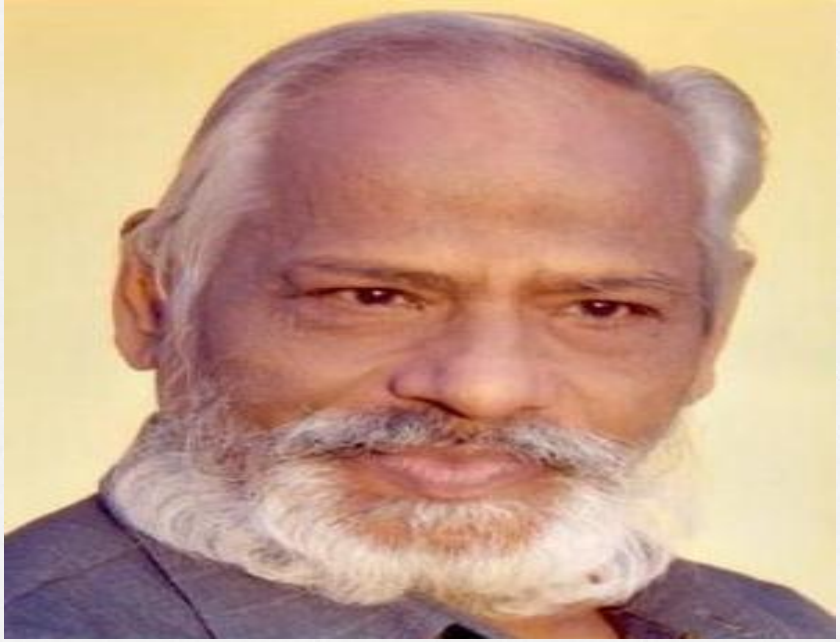

महेन्द्र भटनागर

डॉ महेंद्र भटनागर

(26 जून,1926-27 अप्रैल 2020) , झाँसी (उत्तर प्रदेश) में, जन्म। महेंद्रभटनागर की प्रारम्भिक शिक्षा झाँसी, मुरार (ग्वालियर), सबलगढ़ (मुरैना) में हुई। इन्होंने सन् 1941 में शासकीय विद्यालय, मुरार (ग्वालियर) से मैट्रिक, सन् 1943 में माधव महाविद्यालय, उज्जैन से इंटरमीडिएट, सन्1945 में विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर से स्नातक, सन् 1948 में नागपुर विश्वविद्यालय से परास्नातक (हिन्दी) की शिक्षा और सन् 1957 में 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद' विषय पर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की।भारतीय समाजार्थिक-राष्ट्रीय-राजनीतिक चेतना-सम्पन्न द्वि-भाषिक (हिन्दी एवं अंग्रेजी) कवि एवं लेखक थे।हिन्दी साहित्य में इनका स्थान एक प्रगतिशील कवि के रूप में मान्य है।

प्रकाशित रचनाएँ

•कुल 20 काव्य-कृतियाँ प्रकाशित।

•कविताएँ अंग्रेज़ी, फ्रेंच, चेक एवं अधिकांश भारतीय भाषाओं में अनूदित।

अधिकांश साहित्य 'महेंद्रभटनागर-समग्र' के छह-खंडों में [तीन खण्ड कविता के, दो खण्ड आलोचना के, एक खण्ड विविध लेखन का], 'प्रेमचद-समग्र' (शोध) पृथक से प्रकाशित। एवं मात्र काव्य-सृष्टि 'महेंद्रभटनागर की कविता-गंगा' के तीन खंडों में पुन: प्रकाशित।

'महेंद्रभटनागर की कविता-गंगा'

•खंड : 1 / तारों के गीत, विहान, अन्तराल, अभियान, बदलता युग, टूटती शृंखलाएँ

•खंड : 2/नयी चेतना, मधुरिमा, जिजीविषा, संतरण, संवर्त

•खंड : 3/संकल्प, जूझते हुए, जीने के लिए, आहत युग, अनुभूत-क्षण, मृत्यु-बोध : जीवन-बोध, राग-संवेदन

तुम नहीं कोई
पुरुष की ज़र-ख़रीदी चीज़ हो,
तुम नहीं
आत्मा-विहीना सेविका
मस्तिष्क हीना-सेविका,
गुड़िया हृदयहीना !

नहीं हो तुम
वहीं युग-युग पुरानी
पैर की जूती किसी की,
आदमी के
कुछ मनोरंजन-समय की
वस्तु केवल !

तुम नहीं कमज़ोर,
तुमको चाहिए ना
सेज फूलों की !
नहीं मझधार में तुम
अब खड़ी शोभा बढ़ातीं
दूर कूलों की !

अब दबोगी तुम नहीं
अन्याय की सम्मुख,
नयी ताक़त, बड़ा साहस
ज़माने का तुम्हारे साथ है !
अब मुक्त कड़ियों से
तुम्हारे हाथ हैं !
तुम हो
न सामाजिक न वैयक्तिक
किसी भी क़ैदखाने में विवश,
अब रह न पाएगा
तुम्हारे देह-मन पर
आदमी का वश

कि जैसे वह तुम्हें रक्खे
रहो,
मुख से न अपने
भूल कर भी
कुछ कहो !
जग के
करोड़ों आज युवकों की तरफ़ से
कह रहा हूँ मैं —::
‘तुम्हारा ‘प्रभु’ नहीं हूँ,
हाँ, सखा हूँ !
और तुमको
सिर्फ़ अपने
प्यार के सुकुमार-बंधन में
हमेशा
बाँध रखना चाहता हूँ !

नाच -अज्ञेय

सारांश

'नाच' कविता जीवन की सच्चाई को प्रस्तुत करती है। असल में यह जन्म-मृत्यु के बीच का ही नाच है। यह एक प्रतीकात्मक कविता है। यहाँ निजी जीवनानुभव दूसरों को नाच के रूप में प्रतीत है। 'नाच' यहाँ जीने का प्रतीक है और रस्सी जीवन है। तनी हुई रस्सी पर दोनों तरफ आदमी दौड़ता

है। यह दौड़ मानव का श्रम अस्तित्व प्राप्त करने का तरीका है। जन्म से मृत्यु तक का फासला है 'खंभा'। इन दो खंभों के बीच रस्सी को बाँधा गया है। यानि जन्म से लेकर मृत्यु तक इस जीवन रूपी रस्सी पर चलना हमारी नियती है।

कवि कहते हैं कि मैं तनी हुई रस्सी पर नाचता हूँ। मेरा नाच इन दो खंभों के बीच तन कर बँधी रस्सी पर है। एक खंभे से दूसरे खंभे तक मैं नाच रहा हूँ। इस पर तीक्ष्ण रोशनी पड़ती है। उस रोशनी के सहारे लोग मेरा नाच देख रहे है। लेकिन लोग मुझे नहीं देखता, जिस रस्सी पर मैं नाचता हूँ वह भी नदीं देखता, दोनों ओर के खंभे एवं रोशनी को भी देखता नहीं है। लोग यहाँ सिर्फ मेरा नाच देखते हैं।

तनी रस्सी पर, खंभों के बीच, उस रोशनी में दूसरे लोग को मेरा नाच ही देखते हैं, वास्तव में वह नाच नहीं है। वह मेरा जीवन सत्य है। मैं उन दो खंभों के बीच दौड़ रहा हूँ। यहाँ मेरे जीने का श्रम है।

दूसरों को मेरा यह श्रम नाच प्रतीत होते हैं। लेकिन इन दोनों खंभों के बीच का यह दौड़ असल में खंभे से तनी हुई रस्सी को खोलने या ढीला करने का मेरा श्रम है। अगर रस्सी खोल पाए तो मैं स्वस्थ हो जाऊँगा। यानि ऐसा हो जाये तो मुझे जीवन से छुट्टी मिल जाएगी। लेकिन यह तनाव ढीलता नहीं है। रस्सी, खंभा, तीखी रोशनी, मेरा नाच कभी भी समाप्त होता नहीं है। इसलिए मुझे नाचना पड़ता है। मेरे नाच का अंत मेरे बस की बात नहीं है।

सब लोग नाच ही देखते हैं। वह रस्सी, खंभे, रोशनी, उस तनाव को कोई नहीं देखता। मेरा जीवन सत्य दूसरों के लिए नाच प्रतीत है। लेकिन मेरे लिए अपना सत्य है।

नौका-विहार

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानन्दन पन्त का जीवन- परिचय

सुमित्रानंदन पंत :साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं।पन्त जी मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं।सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म बागेश्वर ज़िले के कौसानी नामक ग्राम में 20 मई 1900 ई° को हुआ। जन्म के छह घंटे बाद ही उनकी माँ का निधन हो गया। उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। उनका नाम गोसाईं दत्त रखा गया।वह गंगादत्त पंत की आठवीं संतान थे। १९१० में शिक्षा प्राप्त करने गवर्नमेंट हाईस्कूल अल्मोड़ा गये। यहीं उन्होंने अपना नाम गोसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया।

नाम	सुमित्रानन्दन पन्त
जन्म	मई 20, 1900 ई० (संवत् 1957 वि०)
जन्म – स्थान	कौसानी
मृत्यु	28 दिसम्बर, 1977 ई०
मृत्यु – स्थान	इलाहाबाद
पिता का नाम	पं० गंगादत्त पन्त
माता का नाम	सरस्वती देवी
भाषा	खड़ीबोली
कृतियाँ	वीणा, उच्छावास, पल्लव, मधु ज्वाला, मानसी, वाणी, युग पथ, सत्यकाम, ग्रंथी, गुंजन, लोकायतन पल्लवणी

श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी को प्राप्त मान-सम्मान व पुरस्कारः-

1.सन् 1960 ई० में हिन्दी-साहित्यकारों ने अज्ञेय द्वारा सम्पादित मानग्रन्थ- रूपाम्बरा, राष्ट्रपित-भवन में तत्कलीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने पन्त जी को दिया था। पन्त जी की षष्टि पूर्ति पर दिया गया रूपाम्बरा जैसा मानग्रन्थ अभी तक शायद ही किसी अन्य को प्राप्त हुआ हो।

2.भारत सरकार द्वारा उनकी साहित्यिक-कलात्मक उपलब्धियों हेतु पदम-भूषण सम्मान सन् 1961 में प्रदान किया गया।

3.कला और बूढ़ा चाँद पर सन् 1961 में ही साहित्यिक अकादमी का पाँच हजार रुपये का अकादमी पुरस्कार मिला।

4.लोकायतन महाकाव्य पर नवम्बर, 1965 में प्रथम सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ।

5.सन् 1965 में ही उत्तर प्रदेश सरकार का विशिष्ट साहित्यिक सेवा हेतु दस हजार रुपये का पुरस्कार मिला।

6.पन्त जी को सन् 1967 ई० में विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट० की मानद उपाधि से विभूषित किया।

7.पन्त जी को सन् 1968 में चिदम्बरा पर भारतीय ज्ञान-पीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

नौका-विहार / सुमित्रानंदन पंत

शांत स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनंत, नीरव भू-तल!
सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल!
तापस-बाला गंगा, निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु-करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलांबर!
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी-विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर।

चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर।
सिकता की सस्मित-सीपी पर, मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर।
मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही, खोल पालों के पर।
निश्चल-जल के शुचि-दर्पण पर, बिम्बित हो रजत-पुलिन निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।
कालाकाँकर का राज-भवन, सोया जल में निश्चिंत, प्रमन,
पलकों में वैभव-स्वप्न सघन।

नौका से उठतीं जल-हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर।
विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल
तारक दल
ज्योतित कर नभ का अंतस्तल,
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किये
अविरल
फिरतीं लहरें लुक-छिप पल-पल।
सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी-सी जल
में कल,
रुपहरे कचों में ही ओझल।
लहरों के घूँघट से झुक-झुक, दशमी का शशि
निज तिर्यक्-मुख
दिखलाता, मुग्धा-सा रुक-रुक।

अब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार।
दो बाहों-से दूरस्थ-तीर, धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर।
अति दूर, क्षितिज पर विटप-माल, लगती भ्रू-रेखा-सी अराल,
अपलक-नभ नील-नयन विशाल;
मा के उर पर शिशु-सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
ऊर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप;
वह कौन विहग? क्या विकल कोक, उड़ता, हरने का निज विरह-शोक?
छाया की कोकी को विलोक?

पतवार घुमा, अब प्रतनु-भार,
नौका घूमी विपरीत-धार।
ड़ाँड़ों के चल करतल पसार, भर-भर मुक्ताफल फेन-स्फार,
बिखराती जल में तार-हार।
चाँदी के साँपों-सी रलमल, नाँचतीं रश्मियाँ जल में चल
रेखाओं-सी खिंच तरल-सरल।
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ-सौ शशि, सौ-सौ उडु झिलमिल
फैले फूले जल में फेनिल।
अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले-ले सहज थाह
हम बढ़े घाट को सहोत्साह।

ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार।
इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला-विकास, शाश्वत शशि का यह रजत-हास,
शाश्वत लघु-लहरों का विलास।
हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन-नौका-विहार।
मै भूल गया अस्तित्व-ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व-दान।

प्यासा कुआँ

ज्ञानेन्द्रपति

जन्म- 1 जनवरी, 1950, झारखण्ड

प्रकाशित कृतियाँ

कविता संग्रह:

1. आँख हाथ बनते हुए (1970)
2. शब्द लिखने के लिए ही यह कागज़ बना है (1981)
3. गंगातट (2000) *किताबघर प्रकाशन*
4. संशयात्मा (2004) *किताबघर प्रकाशन*
5. भिनसार (2006)
6. कवि ने कहा (कविता संचयन) *किताबघर प्रकाशन*
7. मनु को बनती मनई (2013) *किताबघर प्रकाशन*

अन्य:

कथेतर गद्य : पढ़ते-गढ़ते
काव्य-नाटक : एकचक्रानगरी

पुरस्कार व सम्मान

वर्ष 2006 में ‘ संशयात्मा’ शीर्षक कविता संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार के अलावा पहल सम्मान, बनारसीप्रसाद भोजपुरी सम्मान व शमशेर सम्मान सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान और पुरस्कार से विभूषित।

****

प्यास बुझाता रहा था जाने कब से
बरसों बरस से
वह कुआँ
लेकिन प्यास उसने तब जानी थी
जब
यकायक बंद हो गया जल-सतह तक
बाल्टियों का उतरना
बाल्टियाँ- जो अपना लाया आकाश डुबो कर
बदले में उतना जल लेती थीं

प्यास बुझाने को प्यासा
प्रतीक्षा करता रहा था कुआँ, महीनों
तब कभी एक
प्लास्टिक की खाली बोतल
आ कर गिरी थी
पानी पी कर अन्य मनस्क फेंकी गई एक
प्लास्टिक-बोतल
अब तक हैण्डपम्प की उसे चिढ़ाती आवाज़ भी
नहीं सुन पड़ती

एक गहरा-सा कूड़ादान है वह अब
उसकी प्यास सिसकी की तरह सुनी जा सकती है अब
भी
अगर तुम दो पल उस औचक बुढ़ाए कुएँ के पास खड़े
होओ चुप।

बेजगह

अनामिका

बेजगह कवयित्री अनामिका की स्त्री विमर्श कविता है। स्त्री विमर्श उनके काव्य की पहचान है। हमारे समाज के कई नियम परम्पराएँ, रीति-रिवाज़ स्त्रियों के विरुद्ध रचे गये हैं।

उसकेलिए तरह-तरह के मापदंड बनाके रखे हैं। उसकेलिए एक जगह निर्धारित कर दी गयी है। इस जगह से छूटने या गिरने मात्र से उसे बिरादरी से बाहर कर दिया जाता है। टूटे हुए केश और नाखून की तरह।

कवयित्री के मन में अपने संस्कृत टीचर के उस श्लोक का अन्वय अब जीवंत हो उठा है और हर पल सवाल करता है, क्या सचमुच 'केश' और 'नाखून' की तरह 'औरतें' भी अपनी जगह से गिरकर कहीं की नहीं रहतीं।

सामाजिक रूढ़ी परंपरा निभानेवाले समाज में लड़का और लड़की में भेदभाव हैं। दोनों केलिए काम का विभाजन किया गया। लड़की का गौण स्थान, श्रम के काम, सहने की सजा। बिलकुल एक ढाँचे में उसे डाला गया। उसी के अनुसार पाठ्य पुस्तकें तैयार की गयी। उसमें भी वही पाठ पढ़ाया गया जिसमें लड़की का अपना स्थान नहीं होती।इस कविता में शिक्षा व्यवस्था के आरंभिक पाठों पर व्यंग्य किया है।

स्त्री के जन्म लेते ही उसे तरह-तरह के बंधनों में जकड लिया जाता है। जिस घर में उसका जन्म होता उस घर में भी उसकी कोई जगह नहीं होती। वे हवा, धूप और मिट्टी होती हैं। कवयित्री चिंतित होती है कि जगह से छूटी हुई औरत

कटे हुए नाखूनों, कंघी में फँसकर बाहर आये केशों सी एकदम से बुहार दी जानेवाली स्थिति से गुज़र रही है। घर छूटे, दर छूटे, छूटे गये लोग बाग़, कुछ प्रश्न पीछे पड़े थे, वे भी छुट गये। इन सब के साथ जगहें छूटती गयी। परंपरा से छूटकर बस यहीं लगता है कि किसी बड़े क्लासिक से पासकोर्स बि.ए के प्रश्नपत्र पर छिटकी छोटी सी पंक्ति के समान हूँ। मैं नहीं चाहती की कोई सप्रसंग सन्दर्भों के पार मेरी व्याख्या करने बैठे। मैं मुश्किल से इन सारे जीवन-संघर्षों को पार करके पहुँची हूँ। मुझे सभी अधूर अभंग की तरह है जो कहीं भी भंग नहीं है। मैं ऐसी ही समझी पढ़ी जाऊँ।

इसप्रकार स्त्रियों की मनोदशा को अनामिका कविता के माध्यम से व्यक्त करती है। युगों से जोस्त्री विरोधी मानसिकता समाज में व्याप्त है उसे कवयित्री बदलना चाहती है।

बेटी

सरिता शर्मा

कवि परिचय

सरिता शर्मा का जन्म 29 जुलाई को छत्तीसगढ़ में हुआ। इन्होंने हिन्दी एम.ए और पीएच.डी किया है। सरिता शर्मा जी केवल लिखती ही नहीं है बल्कि कवि सम्मेलनों में केन्द्रबिंदु बनकर वे आगे बढ़ती है। लाल किला कवि सम्मेलन में लगभग ग्यारह बार उन्होंने कविता पाठ किया है। उनकी रचना संसार की मूल चेतना में 'स्त्री' रही है। आत्मसम्मान और स्वत्व केलिए संघर्षशील स्त्री का चित्रण इनकी कविताओं में प्रचुर मात्रा में आया है। पुरुष केन्द्रित समाज की अमानवीय अवधारणों के प्रति वह हमेशा विद्रोह करती रहती है।

सरिता जी को अनेक पुरस्कार भी मिल चुके हैं। उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा यश भारती पुरस्कार, ब्रज कोकिला पुरस्कार, महादेवी न्यास द्वारा महादेवी वर्मा पुरस्कार, सुमन सम्मान आदि।

रचनाएँ :- पीर के सातों समुन्दर (गीत), नदी गुनगुनाती रही (गीत) हुए आकाश तुम (गीत), तेरी मीरा ज़रूर हो जाऊँ (मुक्तक), 'चाँद मुहब्बत और मैं' (गज़ल), चाँद सोता रहा (ओडियो सीड़ी) गीत बंजारन के (ओडियो सीडी)।

(कन्या भ्रूण हत्या के संदर्भ में)

मैया! जनम से पहले मत मार,
बाबुल! जनम से पहले मत मार।

चाहे मुझको प्यार न देना,
चाहे तनिक दुलार न देना
कर पाओ तो इतना करना,
जनम से पहले मार न देना
मैं बेटी हूँ, मुझको भी है
जीने का अधिकार।

मेरा दोष बताओ मुझको,
क्यों बेबात सताओ मुझको
मैं भी अंश तुम्हारा ही हूँ,
तजकर फेंक न जाओ मुझको
जीने का जो हक़ दे दो तुम,
देख लूँ ये संसार।

थोड़ी नज़र बदल कर देखो,
संग समय के चलकर देखो
बेटी से भी नाम चलेगा,
ठहरो ज़रा संभल कर देखो
चौथेपन की लाठी बन कर
दूँगी दृढ़ आधार।

मैं जब आँगन में डोलूँगी,
मिसरी सी बोली बोलूँगी
सेवा, करुणा, त्याग तपस्या,
के नूतन द्वारे खोलूँगी
दोनों कुल के मान की ख़ातिर
तन-मन दूँगी वार।

****

मुक्ति की आकांक्षा

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (Sarveshwar Dayal Saxena) का जन्म 15 सितंबर 1927 को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में एक साधारण परिवार में हुआ था। आप तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवियों में से एक हैं। आपकी शिक्षा बस्ती, बनारस और इलाहाबाद में हुई थी। कुछ समय तक स्कूल में अध्यापक रहे, क्लर्क भी रहे परंतु दोनों ही पदों से त्यागपत्र देकर दिल्ली आ गए। दिल्ली में कुछ वर्ष तक आकाशवाणी में समाचार विभाग में काम करते रहे। बाद में 'दिनमान' के उप संपादक रहे और 'पराग' पत्रिका के संपादक बने। यद्यपि आपका साहित्यिक जीवन काव्य से प्रारंभ हुआ तथापि 'चरचे और चरखें' स्तम्भ में दिनमान में छपे आपके लेख ख़ासे लोकप्रिय रहे। आपके साहित्य सृजन में कविता के अतिरिक्त कहानी, नाटक और बाल साहित्य भी सम्मिलित है।

साहित्यिक कृतियाँ:

काव्य संग्रह: 'काठ की घाटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव', 'गर्म हवाएँ', 'कुआनो नदी', 'कविताएँ-1', 'कविताएँ-2', 'जंगल का दर्द' और 'खूँटियों पर टंगे लोग' आपके काव्य संग्रह हैं।

उपन्यास: 'उड़े हुए रंग' आपका उपन्यास है। 'सोया हुआ जल' और 'पागल कुत्तों का मसीहा' नाम से अपने दो लघु उपन्यास लिखे।

कहानी संकलन: 'अंधेरे पर अंधेरा' संग्रह में आपकी कहानियाँ संकलित हैं।

नाटक: 'बकरी' नामक आपका नाटक भी खासा लोकप्रिय रहा।

बाल साहित्य: बालोपयोगी साहित्य में आपकी कृतियाँ 'भौं-भौं-खों-खों', 'लाख की नाक', 'बतूता का जूता' और 'महंगू की टाई' सम्मिलित हैं।

यात्रा-वृत्तांत : 'कुछ रंग कुछ गंध' शीर्षक से आपका यात्रा-वृत्तांत भी प्रकाशित हुआ।

संपादन : इसके साथ-साथ आपने 'शमशेर' और 'नेपाली कविताएँ' नामक कृतियों का संपादन भी किया।

पुरस्कार : 1983 में आपको अपने कविता संग्रह 'खूँटियों पर टंगे लोग' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। आपकी रचनाओं का अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुआ।

निधन: 24 सितंबर 1983 को आपका निधन हो गया।

चिड़िया को लाख समझाओ
कि पिंजड़े के बाहर
धरती बहुत बड़ी है, निर्मम है,
वहाँ हवा में उन्हें
अपने जिस्म की गंध तक नहीं मिलेगी।
यूँ तो बाहर समुद्र है, नदी है, झरना है,
पर पानी के लिए भटकना है,
यहाँ कटोरी में भरा जल गटकना है।
बाहर दाने का टोटा है,
यहाँ चुग्गा मोटा है।
बाहर बहेलिए का डर है,
यहाँ निर्द्वंद्व कंठ-स्वर है।
फिर भी चिड़िया
मुक्ति का गाना गाएगी,
मारे जाने की आशंका से भरे होने पर भी,
पिंजरे में जितना अंग निकल सकेगा, निकालेगी,
हरसूँ ज़ोर लगाएगी
और पिंजड़ा टूट जाने या खुल जाने पर उड़ जाएगी।

'मुक्ति की आकांक्षा' कविता में स्वतंत्रता का महत्त्व बताया गया है। मनुष्य पशु-पक्षी सभी को स्वतंत्रता प्रिय होती हैं।
कवि चिड़िया को समझाता है कि वह बंदी जीवन स्वीकार करे और पिंजड़े के बाहर जाने का विचार त्याग दे। पिंजड़े में सारी सुख-सुविधाएँ थी और चिड़िया बाहर के खतरों से परिचित थी फिर भी वह निरंतर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती है। उसके इस प्रयास से पिंजड़ा टूट जाए या खुल जाए तो चिड़िया उड़ जाएगी। पिंजड़े की लोहे की दीवार भी उसे रोक नहीं पाएगी।
कवि ने बताया है कि सुख-सुविधावाली गुलामी से कष्टदायक स्वतंत्रता ही अच्छी है। स्वतंत्रता में ही जीवन का सच्चा और स्वाभाविक आनंद छिपा हुआ है।

कविता
मुक्ति

अरुण कमल

अरुण कमल (जन्म-15 फरवरी, 1954)

आधुनिक हिन्दी साहित्य के कवि हैं।अरुण कमल का वास्तविक नाम 'अरुण कुमार' है। साहित्यिक लेखन के लिए उन्होंने 'अरुण कमल' नाम अपनाया और यही नाम उनकी स्वाभाविक पहचान बन गया है। उनका जन्म 15 फरवरी 1954 ई०
को बिहार के रोहतास जिले के नासरीगंज में हुआ था। पेशे से वे पटना विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक हैं।

प्रकाशित पुस्तकें

कविता-

1.अपनी केवल धार 1980 (वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)
2.सबूत 1989 (" ")
3.नये इलाके में 1996 (" ")
4.पुतली में संसार 2004 (" ")
5.मैं वो शंख महाशंख (" ")

आलोचना-

1.कविता और समय 2002 (वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)
2.गोलमेज 2009 (" ")

साक्षात्कार-

•कथोपकथन 2009 (वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

सम्मान

1.भारत भूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार 1980
2.सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार 1989
3.श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार 1990
4.रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार 1996
5.शमशेर सम्मान 1997
6.साहित्य अकादमी पुरस्कार 1998 ('नये इलाके में' के लिए)

मुक्ति

आज जब पढ़ते-पढ़ाते मैंने तुझे
मारा, मेरे बच्चे
तब क्यों भर गयीं मेरी आँखें
मन क्यों हो गये मेरे नाखून तक?

तुम रोये नहीं, तुम हिले भी नहीं
बैठे रहे चुपचाप पाँव पर पाँव धरे
और मैंने देखे तुम्हारे उघरे हुए
लम्बे साँवले पाँव।

अब जब सोचता हूँ ठण्डे मन से
जब जब उतरी है बाढ़
देखता हूँ अपने ही अन्दर दुर्गन्ध और पाँक से
भरी हुई गलियाँ
टूटे मकान, ढही भित्तियाँ
देखता हूँ अपना विनाश।

दोष मेरा ही था
मैंने कभी पूछा नहीं, कैसे हो तुम
जानता भी नहीं था क्या-क्या पढ़ते हो तुम

आज जब अचानक देखा मैंने तुम
कुछ भी नहीं जानते
मेरा लड़का कुछ भी नहीं जानता

तब...
सोचो मैं कितना दुखी था
हृदय ने बाँटे थे धमनियों में जो रक्त
आज
वे ही रक्त घोंटते थे हृदय।

दोष लेकिन मेरा भी क्या था
मैं एक रिटायर्ड स्कूल मास्टर
जो सुबह से शाम तक घूमता है यहाँ से वहाँ

इस-उसके बेटे-बेटियों को ट्यूशन पढ़ाता
बैठता कैसे थोड़ी-सी देर खुद अपने बेटे के पास—
जब घर से निकलता, तुम सोये होते
जब लौटता, तुम सोये होते।

चार साल हो गये,
चार साल हो गये, अवकाश मिले—
कितना अच्छा था देखना एक भरा हुआ कमरा

सूर्यमुखी फूलों-सी सैकड़ों आँखें घूमतीं मेरे साथ
मैं खिच्चा उँगलियों में खल्लियाँ
पकड़ाता—और आज मैं सेवा-मुक्त हूँ, आजाद;
क्या किया मैंने इस जीवन में
सयानी लड़कियाँ, बच्चे, कच्ची गृहस्थी
अभी भी जिन्दगी ढूँढ़ती है धुरी
अभी भी जिन्दगी ढूँढ़ती है मुक्ति

कहाँ अवकाश, कहाँ समाप्ति
अभी ही तो शुरू हुई जिन्दगी
अभी ही तो चरखे में डाली है पूनी।

क्यों उठ गये थे हाथ
आज क्यों उठे मेरे हाथ।

शब्दार्थ

उघरे–खुले हुए; **साँवला**–श्यामवर्ण; **भित्ति**–दीवार चित्राधार; **धमनी**–नाड़ी, शिरा; **सेवामुक्त**–रिटायर्ड, काम से अवकाश प्राप्त; **सयानी**–समझदार; **मुक्ति**–मोक्ष, आजादी; **अवकाश**–छुट्टी; **पूनी**–सूत कातने की रूई की बत्ती।